द्वितीय अध्याय : राजस्थान एवं गुजरात की लोक संस्कृति

Chap-2

(i) राजस्थान की भौगोलिक स्थिति :

राजस्थान भूभाग : भारत के पश्चिम भाग को 'राजस्थान' नाम से अभिहित किया जाता है। राजस्थान के उत्तर और उत्तर पूर्व में पंजाब, पूर्व में उत्तर प्रदेश, दक्षिण में मध्य भारत और गुजरात के राज्य तथा पश्चिम में पाकिस्तान से इसकी सीमा स्पर्श करती है। इतिहास में राजस्थान 'मरुप्रदेश' के नाम से प्रसिद्ध है। आज जिस भाग को हम 'राजस्थान' नाम से जानते हैं, प्राचीन काल में वह अनेक राज्यों में विभाजित था और इनके भिन्न-भिन्न नाम थे। मरु भाग की प्राचीनता वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारत से भी सिद्ध होती है। इस प्रदेश की उत्पत्ति के संबंध में रामायण में एक कथा है - भगवान श्री राम ने समुद्र के मार्ग न देने पर क्रुद्ध होकर अग्निबाण संधान किया, तब क्षुब्ध समुद्र ने प्रकट होकर राम से क्षमा याचना कर उस शस्त्र को अपने द्रुमकुल्य नामक उत्तरी भाग में निक्षिप्त करने की प्रार्थना की। श्रीराम ने याचना स्वीकार कर ली। आग्नेयास्त्र के प्रभाव स्वरूप द्रुमकुल्य का जल शुष्क होने से वहाँ मरु प्रदेश की उत्पत्ति हुई।[1]

भू-तत्ववेत्ता भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि प्राचीन काल में यह भू-भाग समुद्र के अतल में था, अब भी यहाँ की बालू रेत में सीप और शंख मिल जाते हैं। भौगोलिक कारणों से समुद्र नीचे की ओर हट गया। इस प्रकार यह मरु प्रदेश समुद्र गर्भ से उत्पन्न हुआ। किसी समय इस प्रदेश में सतलज की एक धारा प्रवाहित होती थी जिसे 'हाकड़ दरिया' कहते थे, बाद में भूमि के ऊँची हो जाने से वह धारा मुलतान की ओर प्रवृत्त होकर 'सिंधु' में जा मिली। मारवाड़ राज्य का एक भाग आज भी हाकड़ा नाम से प्रसिद्ध है।[2]

श्रीयुत गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा ने इस प्रदेश के प्राचीन नामों का प्रमाण के साथ विवेचन किया है।[3] इस विवेचनानुसार बीकानेर तथा जोधपुर का उत्तरी भू-खंड, जाँगल देश कहलाता था और इसकी राजदानी अहिछत्रपुर (नागौर) थी। चौहानों के समय यह भू-भाग संयुक्त रूप से सपादलक्ष कहलाया। इसकी प्रथम राजधानी शाकंभरी (सांभर) व द्वितीय अजमेर रही। वर्तमान अलवर का उत्तरी भू-भाग कुरुदेश के, दक्षिणी और पश्चिमी भाग मत्स्य देश के एवं पूर्वी भाग शौरसेन प्रदेश के अंतर्गत था। भरतपुर, धौलपुर और करौली का अधिकांश भाग शौरसेन प्रांत में था। वर्तमान जयपुर का उत्तरी भाग मत्स्य व दक्षिणी भाग सपादलक्षान्तर्गत था, मत्स्य की राजथानी वैराट थी। उदयपुर का प्राचीन नाम शिविदेश था और इसकी राजधानी माध्यमिका नगरी थी। इसके खंडहर चित्तौड़ से सात मील उत्तर की ओर हैं। मेव जाति का अधिपत्य होने से यह भाग मेदपाट या मेवाड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ। डुंगरपुर-बाँसवाड़ा को बागड़ (वार्गट) कहा जाता था। जोधपुर के रेतीले प्रदेश को मरुप्रदेश (मारवाड़) कहते थे। इस भाग का जांगल देश कुरु राज्यान्तर्गत था इसका उल्लेख महाभारत में मिलता है।[4]

---

1. तेन तन्मरुकांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् । निपातिवः शरो यत्र व्रज्राशनिसमप्रभः ॥३३॥
   - वाल्मीकीय रामायण, युद्धकांड, सर्ग 22
2. मारवाड़ का इतिहास, पृ. 3, श्री रेऊ। 'निहालदे-सुलतान' लोकगाथाओं में भी 'हाकड़' दरिया का उल्लेख है।
3. राजपूताने का इतिहास, पृ. 2, ले. गौ. ही. ओझा
4. पैत्र्यं राज्यं महाराज, कुरवस्ते सजांगला - महाभारत उद्योगपर्व, अध्याय 54, श्लोक 7

ईसा की द्वितीय शताब्दी से चतुर्थ शताब्दी तक इस भू-भाग के पश्चिमी प्रांतों पर शकों का अधिकार रहा। ई.सन् २५० के गिरनार शिलालेख से शक नरेश रुद्रदामा का राज्य मरु और साबरमती के आसपास तक सिद्ध होता है।[1] चीनी यात्री ह्यूनसांग ने इस प्रदेश को चार भागों में विभाजित पाया था। (1)गुर्जर (2) वधारि (3) वैराट (4) मथुरा।

आधुनिक राजस्थान :

नवंबर सन् 56 में अजमेर-मेरवाड़ा को सम्मिलित कर वृहत्तर राजस्थान का निर्माण हुआ। इस वृहत्तर राजस्थान में भाषागत वैभिन्य स्पष्ट है, राजनीतिक द्वष्टि से भले ही यह एकता के लिए उठाया गया कदम हो। वर्तमान राजस्थान में भरतपुर, अलवर, करौली आदि ऐसे भाग हैं जहाँ की सांस्कृतिक परंपरा शौरसेन प्रांत की संस्कृति के निकट है।

राजस्थान का नामकरण:

'राजस्थान' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग 'राजस्थानीयादित्य' वि.स. 682 में उत्कीर्ण बसन्तगढ़ (सिरोही) के शिलालेख में उपलब्ध हुआ है।[2] मुंहणोत नैणसी (वि.सं. 1667-1727) की ख्यात में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।

''संमत 1672। राँणो अमरसिंघ साहजादे खुरम सूं मिलियो। तठा पछै राणों अमरसिंग उदैपुर आयो। तठा पछै 'राजस्थानन उदैपुर हुवो।''[3]

ब्रिटिश शासकों ने इस प्रदेश का नाम तैलंगाना, गोंडवाना और उड़ियाना आदि के अनुकरण में 'राजपूताना' दिया था। प्रदेश सूचक 'राजपूताना' शब्द का प्रथम लिखित प्रयोग 16वीं सदी के प्रारंभ में जार्ज टामस कृत माना जाता है।[4] इस नामकरण का कारण यहाँ राजपूतों का निवास-आधिक्य ही था। जैसे गोंड जाति के बसने से गोंडवाना और तेलंगों से तेलंगाना कहा गया वैसे ही राजपूतों के निवास स्थल को 'राजपूताना' नाम दिया गया। फिर भी यह नाम प्रचलित नहीं हुआ।

प्रदेश विशेष के लिए 'राजस्थान' शब्द प्रयुक्त करने का प्रधान श्रेय कर्नल जेम्स टॉड नामक इतिहासकार को है, जिसने 'एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक ग्रंथ लिखा है।[5]

---

1. इंडियन एंटिक्वेरी, भाग 7, पृ. 259
2. राजस्थान पुरातत्त्व संग्रहालय, अजमेर में सुरक्षित और महाकवि माघ उनका जीवन और कृतियाँ, डॉ. मदनमोहनलाल शर्मा, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली में प्रकाशित, पृ. 4
3. राज. प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सुरक्षित, 'सरस्वति भंडार पुस्तकालय' की हस्तलिखित प्रति, पत्र सं. 27। 'राज. के साहित्यिक ग्रंथों में राजस्थान संबंधी प्राचीनतम यही उल्लेख दिया गया है''- ''राजस्थान का पींगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर ''
4. मिलिट्री मैमोअर्स ऑफ़ मिस्टर ज्योर्ज टॉमस, पृ. 347, सन् 1875 ई.
5. विलियम क्रुक्स, लंदन (1829 ई.), हिन्दी संस्करण 'टॉड कृत राजस्थान' भाग 1, खण्ड 1 'राजपूत कुलों का इतिहास', मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ. 13

राजस्थानी भाषाः

राजस्थानी भाषा का नामकरण अनेक आधुनिक भाषाओं के नाकरण की भाँति आधुनिक विद्वानों की देन है जिसका आधा 'राजस्थान' है। राजस्थानी भाषा को प्राचीन काल में मरुभूमि भाषा[1], मारु भाषा[2], मरुदेशीया[3] और मरुवाणी[4] आदि नामों से अभिहित किया है।

वस्तुतः राजस्थान में कोई एक ऐसी भाषा नहीं है जो पूरे राजस्थान में विनिमय विचार का माध्यम हो, ऐसी भाषा तो हिन्दी ही है। हिंदी सारे राजस्थान जनपद में बोली और समझी जाती है। जिसे राजस्थानी कह सकते हैं वह कोई एक बोली नहीं वरन् 5-6 बोलियों का समुदाय है। जो निम्नलिखित है - (1) मारवाड़ी (2) ढूंढ़ाडी (3) मेवाती (4) बागड़ी और (5) मालवी। राजस्थानी का साहित्यिक रूप मुख्यतः पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी रहा है और इस रूप में साहित्य भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। मारवाड़ राजस्थान का विशेष भूभाग है और मारवाड़ी विस्तार क्षेत्र, जनसंख्या एवं साहित्य की द्रष्टि से अनेक भारतीय भाषाओं से बढ़कर है। राजस्थानी भाषा की समस्त राजस्थान में प्रचलित एक विशेष शैली 'डिंगल' भी मुख्यतः मारवाड़ी पर ही आधारित है। उक्त कारणों से मारवाड़ी को राजस्थानी भाषा का साहित्यिक रूप माना गया है।

(ii) गुजरात की भौगोलिक स्थितिः

भारत के पश्चिमी किनारे 20.1 और 24.7 उत्तरी अक्षांश और 68.4 और 74.4 पूर्व रेखांश पर गुजरात आया हुआ है। गुजरात के पश्चिम में अरबी समुद्र है, वायव्य में कच्छ की खाड़ी है, उत्तर में छोटा रणप्रदेश और मेवाड़ का रण आया हुआ है और ईशान दिशा में आबू है। गुजरात की पूर्व दिशा सघन वनों से सुरक्षित है जबकि उत्तरी दिशा विन्ध्य पर्वतमालाओं की धारों से सुरक्षित है। केन्द्रीय राष्ट्रीय राजमार्ग का बड़ौदा से रतलाम की ओर का भाग ज्यादा खुला है। और दक्षिण में फिर से सतपुड़ा के पहाड़ों की मुख्य पर्वतमालाओं की उत्तरी पहाड़ियों वाला उच्च उबड़-खाबड़ प्रदेश है। राज्य का कुल भौगोलिक विस्तार 4,42,67,500 एकड़ है।

प्राकृतिक लक्षणों की द्रष्टि से गुजरात को तीन प्रदेशों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) कच्छ के रणप्रदेश और अरावली पहाड़ों से दमणगंगा तक विस्तृत मुख्य भूमि
(2) सौराष्ट्र और कच्छ का पर्वतीय द्विपकल्प प्रदेश
(3) उत्तर पूर्व की पर्वतीय पट्टी

मुख्य भूमि के अंतर्गत सपाट मैदान है जबकि थोड़ा ठेठ उत्तरी भाग रेतीला है। साबरमती, मही, नर्मदा, तापी जैसी बड़ी नदियाँ और बनास, सरस्वती, विश्वामित्री, ढाढर, कीम, पूर्णा, अंबिका, औरंगा, दमणगंगा, शेत्रुंजी, भादर और आजी जैसी छोटी नदियाँ और वर्षा के जल को खंभात की खाड़ी में ले जाने

---

1. 'मरुभूम भाषा तणो मारग रमै आछी रीतसूं' - रघुनाथ रूपक गीतां रा, कवि मंछ कृत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. 'कर आणंदक बेस बहण मारू भाषा' बडी पाबू प्रकाश, मोडजी
3. 'प्रायो मरुदेशीया प्राकृत मिश्रित भाषा, वंश भास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण
4. डिंगल उपनामक कहुंक मरुवानीहु विधेय, वंशभास्कर, महाकवि सूर्यमल मिश्रण

वाले असंख्य झरने गुजरात के मैदानों में पानीपूर्ति करते हैं। बनासकांठा जिले की सरस्वती और लुणी और साबरमती के अलावा गुजरात की बड़ी नदियाँ पूर्व से पश्चिम किनारे तक बहती हैं और खंभात की खाड़ी में जा मिलती हैं।

गुजरात प्रदेश के उत्तर में आबू पर्वत (राजस्थान) कहीं-कहीं पर समुद्र तल से 5600 फीट जितना ऊँचा है। जरा और उत्तर में 100 मील लंबा आरासुर पर्वत है। गुजरात के पूर्व प्रदेश तक पर्वतों की विशाल पट्टी है। पूर्व में समुद्रतल से 2500 फीट ऊँचा और 26 मील के घेरेवाला पावागढ़ पर्वत है। उसके बाद सतपुड़ा की पहाड़ियाँ (राजपीपला की पहाड़ियाँ) हैं। अंत में पूर्व की ओर सुरत जिले में 'पारनेरा' पर्वत दिखाई देता है। गुजरात के सुदूर दक्षिण में 100 मील के प्रदेश में बिखरी हुई सह्याद्री पर्वत की पहाड़ियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ गुजरात की वन समृद्धि में बढ़ावा करती हैं। सौराष्ट्र प्रदेश द्विपकल्प है। शेत्रुंजी, चोटीला, बरडो, गिर और गिरनार ये माने हुए पहाड़ हैं। जिसमें गिरनार पर्वत सर्वाधिक ऊँचा है। ऐसी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण गुजरात में अत्यधिक गर्मी या ठंडी हवा रहती है। यहाँ 15 से 100 इंच तक वर्षा होती है। जमीन गोराडु, काली, कंपवाली, रेतीली अनेक प्रकार की है और कपास (रुई), गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, तमाकू इत्यादि मुख्य फसलें हैं।

संपूर्ण राज्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है- (1) गुजरात (2) सौराष्ट्र (3) कच्छ।[1]

'गुजरात' के भौगोलिक विस्तार तथा 'गुजरात' संज्ञा प्रयोग का निर्देश करते हुए प्राध्यापक डॉ. के. का. शास्त्री ने अपने इतिहास में लिखा है कि अपने प्रदेश को 'गुजरात' नाम मिला, वह उस समय के पूर्व आबू के उत्तरी ओर के किनारे जयपुर तक फैली हुई 'गुर्जर' प्रजा के कारण ही था। आश्चर्य की बात तो यह है कि अल्बरूनी (हिजरी सन् 420-480 वि.सं. 1026-1086) ने अपने यात्रावर्णन में एक देश का नाम 'गुज्रात' लिखा है। सोलंकी राजाओं के साथ 'गुजरात' आबू के दक्षिण में मही नदी तक बढ़ता है। (अल्बरूनी के बाद आबू के दक्षिण के प्रदेश का उल्ले कवि नरपति नाल्ह ने 'बीसलदेवरासौ' में वि.सं. 1272 में किया था।)[2]

प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री ने इस संबंध में और भी विस्तार से समझाते हुए गुजराती के इतिहास ग्रंथ में लिखा है - 'कच्छ' शब्द का प्रयोग उस प्रदेश की भूमि के लिए पाणिनी के समय से मिलता है। 'सौराष्ट्र' को पहले सुराष्ट्र कहते थे जो बाद में सोरठ कहलाया। मराठा काल में 'काठियावाड़' कहलाया। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में उत्तर गुजरात 'आनर्त' के नाम से जाना जाता था। मैत्रक काल में 'लाट' नाम शायद समस्त गुजरात के लिए प्रयोग में आने लगा। 'गुर्जर भूमि' या 'गुर्जर देश' नाम के बदले गुजरात रूप प्रयोग सर्वप्रथम चालुक्य (सोलंकी) काल के मध्य, 12वीं शताब्दी में प्राप्त होता है। ब्रिटिश काल में अहमदाबाद, खेड़ा, पंचमहाल, सूरत और भरूच ये मुंबई इलाके के उत्तरी भाग के जिले बने और रजवाड़ों का समूह, अलग रेजिडेन्सियों में बँटा। स्वतंत्रता के पश्चात् रजवाड़ों के भारत में विलीनीकरण के पश्चात् मुंबई राज्य में बनासकांठा, साबरकांठा, महेसाणा, वडोदरा तथा डांग जिले मिला दिए गए। बाद में भावनगर, सुरेन्द्रनगर, अमरेली, राजकोट, जूनागढ और कच्छ भी जोड़े गए। सन् 1960 में मुंबई राज्य का द्विभागीकरण

---

1. गुजरात - (1966) (वार्षिक संदर्भ ग्रंथ), संकलन-संशोधन एवम् संदर्भ शाखा से अनुवाद किया। पृ. 1-2
2. गुजरात का इतिहास - प्राध्यापक डॉ. के. का. शास्त्री

होने पर गुजरात के इन सभी जिलों का गुजरात राज्य में समायोजन हुआ। इस प्रकार गुजरात का भौगोलिक विस्तार घटता-बढ़ता रहा है।[1]

गुजरात का नामकरण:

'गुजरात' नाम की व्युत्पत्ति के लिए दो विकल्प प्रस्तुत किए गए हैं-(1) गुर्जरराष्ट्र (2) गुर्जरत्रा।

(1) गुर्जरराष्ट्र - इस विकल्प द्वारा यह कहा जाता है कि- गुर्जरराष्ट्र = गुर्जररत्थ (या गुज्जररठ्ठ) हुआ उसमें से 'गूजराथ' शब्द आया जो बाद में 'गुजरात' रूप से व्यापक बन प्रचलित हुआ। अलबत्ता गुजराथ और 'गुजरात' के बीच वर्णस्वरूप भेद स्पष्ट होने के कारण इसको स्वीकृत नहीं किया गया।

(२) गुर्जरत्रा = गुज्जरत्ता बन 'गुजरात' हुआ यह मत सर्वस्वीकृत हुआ। ये 'गुर्जरत्रा' शब्द 'गुर्जरत्रामंडल' या 'गुर्जरत्राभूमि' इत्यादि स्वरूप में आठवीं-दसवीं शताब्दी में मिलता है। फिर भी अभी का गुजरात और तत्कालीन गुजरात प्रदेश के बीच सीमाभेद तो रहेगा ही।[2]

गुजराती भाषा:

भारतीय आर्य भाषा शाखा को प्राचीन, माध्यमिक और अर्वाचीन तीन भागों में बाँटा गया। जिसमें गुजराती अर्वाचीन विभाग से उत्पन्न हुई। अतः हेमचंद्राचार्य के अपभ्रंश में से क्रमशः विकसित होकर गुजराती भाषा की उत्पत्ति हुई ऐसा कह सकते हैं। वैसे तो गुजराती भाषा को 'गुर्जर भाषा' ऐसा नाम पंद्रहवीं शती में नरसिंह मेहता के समकालीन कवि भालण द्वारा मिलता है। कवि भालण उनके पहले 'नळाख्यान' और दसमस्कंध में लिखते हैं - 'गुर्जर भाषाऐ नलराना गुण मनोहर गाऊँ'। गुजराती शब्द को भाषा रूप में 17वीं सदी में आख्यानकला का सर्वोत्तम कलाकार और मध्ययुगीन महाकवि प्रेमानंद अपने 'नागदमन' में उल्लेखित करते हैं-

'हृदे ऊपनी माहरे अभिलाखा,
बांधु नागदमन, गुजराती भाखा'

अर्थात् मेरे अंतर हृदय की यह अभिलाषा है कि मैं गुजराती भाषा में नागदमन बांधु या वर्णित करुं।[3]

जहाँ हाल में जिस प्रदेश में हम रह रहे हैं वह गुर्जर जाति का प्रदेश था और गुर्जरों की भाषा गुजराती कहलाई। गुर्जर देश की भाषा गौर्जर अपभ्रंश रूप में जानी जाती थी और इसी गौर्जर अपभ्रंश से कालक्रमानुसार गुजराती प्रांतीय भाषा रूप में अवतरित हुई। मुसलमानों के शासनकाल के दौरान गुजराती में अरबी, फारसी शब्दों का भंडार मिल गया। इस तरह आज की गुजराती भाषा एक ओर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश द्वारा गढ़ी गई तो दूसरी ओर फारसी-अरबी और अंग्रेजी भाषाओं से समृद्ध बनी है। इस प्रकार सामान्य स्वरूप की

---

1. गुजराती के इतिहास ग्रंथ - डॉ. हरिप्रसाद शास्त्री

2-3. गुजराती भाषानुं अध्यापन - रणजीतभाई देसाई, मगनलाल नायक, बकुलभाई जे. रावल, पृ. 1,2,3,4,5 का अनुवाद हिन्दी में

द्रष्टि से गौर्जर अपभ्रंश के बाद गुजराती भाषा को तीन कोटियाँ या वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (1) पुरानी गुजराती (2) अर्वाचीन गुजराती (3) इन दोनों के बीच स्तर की - अंतराल भूमि की गुजराती।

उपसंहार :

राजस्थान एवं गुजरात की भौगोलिक परिस्थितियाँ, नामकरण एवं भाषा के रूप में संदर्भ में विचार विमर्श करने के बाद अंत में व्याख्यायित होता है कि भौगोलिक द्रष्टि से राजस्थान एवं गुजरात निकटवर्ती प्रदेश होने की वजह से अनेक द्रष्टियों से साम्यता एवं वैषम्य लिए हुए है। राजस्थान के दक्षिण में मध्यभारत और गुजरात के राज्य तथा गुजरात की उत्तर में मेवाड़ और ईशान में आबू स्थित है।

आधुनिक गुजरात राज्य की भौगोलिक सीमाएँ 1960 में अस्तित्व में आईं। मध्यकालीन गुजरात के विभिन्न भागों में विभिन्न दरबारों, राजाओं, नवाबों एवं दिल्ली के प्रतिनिधियों का राज रहा। इन छोटे-छोटे राजघरानों के वैवाहिक एवं राजनीतिक संबंध राजस्थान के राजघरानों से बनते रहे हैं। हेमचंद्राचार्य ने अपने व्याकरण में जो उद्धरण दिए हैं उनमें गुजराती, राजस्थानी और ब्रजभाषा के साथ प्रारंभिक खड़ी बोली भी देखी जाती है। श्रीधरकृत 'रणमल्ल छंद' (संवत 1454) और पद्मनाभ कृत कान्हड़दे प्रबंध (1512) में भाषा का प्राचीन स्वरूप (प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी) स्पष्ट होता है।

गुजरात के हिन्दी काव्य में हमें लगभग वही दो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं जो राजस्थानी एवं हिन्दी क्षेत्रों के साहित्य में इस काल विशेष में प्रचलित रहीं। एक तो संप्रदायों से संबंधित काव्य-रचना और दूसरी संप्रदाय निरपेक्ष काव्य रचना। गुजरात में रामभक्ति से अधिक कृष्णभक्ति का जोर रहा और प्रेमाश्रयी शाखा से अधिक ज्ञानाश्रयी शाखा का। इस काल में केवल राजाओं और राज्याश्रित कवियों की रचनाओं में ही नहीं, कुछ भक्तकवियों की कृतियों में भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव देखा जा सकता है। इसका कारण शायद इन राजाओं एवं कवियों का राजस्थान के दरबारों से संबंध एवं चारणी साहित्य की रचना ही हो सकता है।[1]

(ii) राजस्थान की संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ:[2]

इस प्रदेश की संस्कृति उच्च, महान एवं विशिष्ट रही है। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से यह प्रदेश अविछिन्न रहा है, जिसका विशाल भू एवं सांस्कृतिक परिवेश, क्षेत्र रहा है। यह प्राचीन और पावन भूमि है, जहाँ हमारी प्राचीन एवं महान् संस्कृति एवं सभ्यता के अवशेष विद्यमान हैं। राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की ओर देखें तो यह स्पष्ट होता है कि यह इतिहास अत्यंत प्राचीन है। जहाँ मानव ने मौलिक रूप में स्थानीय प्रभावों से प्रभावित होकर संस्कृति का विकास किया है, वहीं विदेशी प्रभावों ने भी संस्कृति को यथेष्ट रूप से प्रभावित किया है। राजस्थान राज्य का नाम स्वयं एक सांस्कृतिक एकता का सूचक है, जो युगों से भारतीय परंपरा से जुड़ा रहा है। राजस्थान प्रदेश बाह्य सभ्यताओं और संस्कृतियों से संबंध जोड़े हुए था और समन्वय

1. गुजराती साहित्यनी विकासरेखा - खण्ड 1 (मध्यकाल) - आचार्य डॉ. धीरूभाई ठाकर, पृ. 7,8,13 (गुजराती से हिन्दी में अनुवादित)
2. राजस्थानी भाषा : साहित्य संस्कृति - डॉ. कल्याणसिंह शेखावत

की प्रवृत्ति ने विदेशी संस्कृति के समायोजन में सहायता प्रदान की।

जैसा संस्कृति अपने आप में कोई एक युग के परिवेश का अध्ययन नहीं है, ठीक उसी तरह राजस्थानी संस्कृति ने भी कई आयामों को पार करके अर्वाचीन संस्कृति तक पहुँचा है।

(1) प्रागैतिहासिक युग (2) महाकाव्य और पौराणिक युगीन राजस्थान (2000 ई. पूर्व से नवीं शती ई.) (3) धार्मिक आन्दोलन तथा जनपद युगीन राजस्थान (4) गुप्त और गुप्तोत्तर संस्कृति और राजस्थान (300-100 ई.पू.) (5) पूर्व एवं उत्तर मध्यकालीन संस्कृति (700-1800 ई.) (6) वर्तमान युगीन राजस्थानी संस्कृति (1800 से अद्यतन)।

राजस्थानी संस्कृति कभी भी अपने केन्द्र बिंदु से अलग नहीं हटी और सांस्कृतिक उपादानों को भारतीय संस्कृति से ग्रहण करती रही। राजस्थानी संस्कृति के प्रणयन एवं निर्वहन में यहाँ के सपूतों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जिनमें यहाँ के वीर-वीरांगनाओं, संतों, भक्तों, कवियों और साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राम का मर्यादापुरुषोत्तम रूप ही राजस्थानी वीरों का आदर्श बना तो लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के कर्म का संदेश उनके जीवन का उद्देश्य बना। उन्हीं दोनों मिले-जुले स्वरूपों ने यहाँ के वीरों को कर्तव्य का पथ प्रदर्शित किया।

महाराणा खुम्माण से लेकर महाराणा प्रताप तक, दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान से लेकर सोनगरा वीरमदे चौहान तक, संस्कृति गौरव की महान परंपरा निरंतर प्रवाहमान रही। पन्नादास, वीर जैमल, वीर दुर्गादास राठौड़ जैसे सपूत अपनी स्वामिभक्ति के लिए विख्यात हैं। वहीं भक्तों और साहित्यकारों में आशानंद, ईसरदास, रामासांदू, पृथ्वीराज राठौड़, रावल हरराज और भक्त सिरमौर मीरांबाई को सदैव याद किया जाएगा।

राजस्थानी संस्कृति की विशेषताएँ:

राजस्थानी संस्कृति की विशेषताओं को निम्न बिंदुओं के माध्यम से देखा जा सकता है-

(1) धर्म व दर्शन :

राजस्थानी जनमानस अपनी धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों तथा दर्शन में भारतीय दर्शन से कभी अलग नहीं रहा। ईश्वर में आस्था, जन-जन में राम के दर्शन करना यहाँ के जनमानस की विशेषता है। एक ओर जहाँ परंपरागत सनातन धर्म का प्रचलन रहा, वहीं दूसरी ओर लोक देवी-देवताओं का भी महत्व बढ़ा। यज्ञ, हवन, देव-पूजन, षोड्ष संस्कार, चार आश्रम, वर्ण, चार पुरुषार्थ आदि भावनाएँ मूलतः विद्यमान रहीं। जिसके साथ-साथलोक विश्वासों को बढ़ावा मिला, जिसमें दैविक शक्तियों से भय, भय के उपाय, जादू-टोने, टोटके, लोकोत्तर शक्ति को दैवीय प्रकोप के रूप में स्वीकार करना, भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन, आदि विशेषताएँ राजस्थानी धर्म व दर्शन की मानी जा सकती हैं। जिसमें समयानुसार परिवर्तन भी आता रहा। संत संप्रदाय इनकी गतिशीलता का प्रमाण है। राजस्थानी संस्कृति भारतीय की भाँति धर्म-प्रधान है। जिसमें यहाँ की समाज व्यवस्था और जनसाधारण नियंत्रित है। धर्म ने ही एक ओर जीवन का आचरण सिखाया, अधिकार कर्तव्यों की सीमाओं में

बाँधा तो वहीं अनेक अंधविश्वास, आडंबर, धारणाएँ व कर्मकांड प्रचलित हुए। पुनर्जन्म को भी महत्व दिया गया। धर्म ने ही व्यक्ति के हृदय में देशप्रेम, स्वामीभक्ति, मानवता के प्रति प्रेम और दया भाव विकसित किया। भविष्य जानने की उत्सुकता तथा कर्म के साथ धर्म का समन्वय राज संस्कृति में महत्वपूर्ण माना गया है। तंत्रों व मंत्र प्रयोग का महत्व जनमानस में प्रचलित था। शारीरिक व्याधियों को समाप्त करने के लिए एक ओर देवी पूजा तो दूसरी ओर झाड़े,ताबीज, डोरे, तांतीया लोकप्रिय हुए।

''जाहि विध राखै राम ताहि विध रहियै'' की विचारधारा ने यहाँ के जनमानस को ईश्वर के प्रति आस्थावान बनाया। ग्रहशांति हेतु पूजा-पाठ, दान-दक्षिणा, वृक्षों का पूजन भी लोक प्रचलित हुआ। पीपल पूजा, तुलसी पूजा, वट पूजा, नीम और खेजड़ी पूजन आदि लोक विश्वास व धारणाओं का परिणाम है, जिनका राजस्थान में अपना ही रंग-ढंग है।

राजस्थानी संस्कृति आस्थाओं और विश्वासों में पली-पोसी है। परिणामस्वरूप विश्वास के प्रतीकों और श्रद्धा पात्रों के रूप में लोक देवी-देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जिन्हें 'पीर' का नाम दिया गया जो पारलौकिक प्राणी न होकर सामाजिक प्राणी ही थे। जिनमें केवल पुरुष ही नहीं नारियाँ भी रही हैं, जिन्हें सती रूप में तो कभी देवियों, माजी सा, मावड़ियांजी के रूप में पूजा जाता है।

धार्मिक द्रष्टि से राजस्थानी संस्कृति सरलता, सहजता एवं समन्वय को लिए हुए रही। यही कारण है कि यहाँ एक ओर शैव और वैष्णव मतावलंबी धर्म, संप्रदायों की भक्तिपीठें हैं तो दूसरी ओर संतों की जन्मभूमि है जिन्होंने ईश्वर का भजन किया तो लोक देवताओं को भी यहाँ के निवासियों ने वही आदर व सम्माननीय स्थान प्रदान किया जो इनकी मौलिक विशिष्टता कही जा सकती है।

(ii) मेले, उत्सव, त्यौहार एवं व्रत:[1]

राजस्थानी संस्कृति का परिचय हम इनके मेले, उत्सवों, त्यौहारों आदि से प्राप्त कर सकते हैं। जिनका धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक द्रष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। इन त्यौहारों में यहाँ की जनता का स्पंदन, हर्षोल्लास, उनकी मान्यताएँ, श्रद्धा एवं विश्वास हैं। राजस्थान के मेलों और उत्सवों में यहां की सांस्कृतिक परंपरा आज भी प्राणवान है। यहाँ अक्षय तृतीया, शीतलाष्टमी, गणगौर, नागपंचमी, तुलसीपूजन, धींगा गवर, छोटी तीज, बड़ी तीज, करवा चौथ आदि प्रमुख हैं।

यहाँ के मेले किसी न किसी लौकिक परंपरा को लिए हुए हैं चाहे आज उनका जो कुछ भी स्वरूप हो मूल रूप में वे अपनी मौलिकता लिए हुए है जो स्थानीय संस्कृति का परिचय देते हैं। यह मेले यहाँ के शूरवीरों, सतियों की स्मृति में आयोजित होते हैं। कुछ मेले लोक देवी-देवताओं से भी जुड़े रहे हैं। वैसे सतियों, झूंझारों और भोमियाजी को लोक देवी-देवता स्वरूप माना जाता है। पाबूजी, हड़बूजी, गोगाजी, तेताजी, मेहाजी, रामदेवजी आदि के मेले आयोजित होते हैं। इसके अलावा करणीजी, हिंगलाज माता देवियाँ रही हैं जिनकी स्मृति में मेले लगते हैं।

1. मेले और त्यौहार : पूनम सरमा

इन मेलों के साथ-साथ आयोजित होनेवाले व्रत-उत्सवों का भी विशेष महत्व है। नवरात्रि आदि व्रत, उत्सव एकाकी एवं सामूहिक रूप मे आयोजित किए जाते हैं। तीज, गणगौर आदि नारी समाज द्वारा मनाए जाने वाले ऐसे व्रत-उत्सव हैं जो सुहाग के चिरायु होने के साथ उचित वर प्राप्ति के लिए किए जाते हैं।

तीर्थराज पुष्कर का मेला धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है जो हर माह की पूर्णिमा विशेषकर कार्तिक पूर्णिमा को बड़े पैमाने पर मनाया जाता है जो राजस्थान का बड़ा मेला माना जाता है। जोधपुर में भाद्रमास की दूज तथा दसमी तिथि को रामदेव बाबा का मेला रामदेवरा में मनाया जाता है जो उत्तर भारत के बड़े मेलों में से एक है। इसके अलावा भर्तृहरि, डिग्गी, शिवाड़ का मेला, शीतला माता, कैला देवी का मेला, रणथंभौर का मेला, केसरियानाथजी का मेला, नाकोड़ा इत्यादि व्रत-उत्सव मेले इसी श्रृंखला की कड़ियाँ हैं।

चैत्र माह में गणगौर तथा सावन माह में 'तीज' का त्यौहार मनाया जाता है। ये राजस्थान की संस्कृति के विशिष्ट परिचायक हैं। गणगौर 'गौरी' की अर्चना का त्यौहार है, जिसके बिना राजस्थानी लोकगीतों की परंपरा अधूरी है। गणगौर के साथ घूमर का भी महत्व है।

अन्य मेलों में मोती डुंगरी (जयपुर), सालासर (चुरु), मेड़ता शहर, झुंझनू, चारभुजा, माता कुंडलिनी तथा कागे का मेला आदि सांस्कृतिक द्रष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(iii) पशु मेले:

राजस्थान के जनजीवन से पशु मेले भी गहन रूप से जुड़े रहे जिनका भी सांस्कृतिक एवं आर्थिक महत्व रहा है। चूँकि पशुओं का धन के रूप में स्वीकार किया गया है। मेलों में इनका क्रय-विक्रय होता है। प्रसिद्ध पशुओं में नागौरी बैल, सांचोरी गाय और गधा मालानी के घोड़े, ऊँट आदि रहे हैं। इन पशु मेलों में नागौर, परबतसर, पुष्कर, बाड़मेर, जैसलमेर, पिंडवाड़ा, तिलवाड़ा इत्यादि प्रसिद्ध हैं। जहाँ पशुधन के क्रय-विक्रय के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता है तथा लोकोत्सवों का भव्य आयोजन होता है।

''इन मेलों तथा त्यौहारों के आयोजन में संपूर्ण लोकजीवन पूरी सक्रियता से सम्मिलित होता है और यहाँ की लोक-संस्कृति जीवंत हो उठती है। इनके प्रति जनमानस की गहरी भावात्मक आस्था पाई जाती है। बरसों बरस बीत जाने के बाद भी लोक आस्था के ये स्थल अपनी पहचान बनाए हुए हैं तथा समाज को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोये हुए हैं।''[1]

(iv) रीति-रिवाज:

भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता के रूप में हम संस्कारों को ले सकते हैं। भारतीय आदर्शों को अंगीकृत करने वाली राजस्थानी संस्कृति भी संस्कारों के प्रभाव से अछूती नहीं रही है। रीति-रिवाज मूल रूप से देखें तो इन संस्कारों का परिवर्तित एवं लौकिक स्वरूप ही है। इन्हीं रीति-रिवाजों के आधार पर समाज का संचालन होता है व सामाजिक मूल्यों में संतुलन बनाए रखा जाता है। कोई भी रीतियों-नीतियों का उल्लंघन कर समाज में सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता है। इन्हें समाज का नैतिक बंधन या नियम अवश्य मान सकते

हैं तदनुसार मानव को अपना जीवन ढालना पड़ता है तथा उल्लंघन करने पर सामाजिक प्रताड़ना का कोपभाजन बनना पड़ता है।

राजस्थान में इन रीति-रिवाजों का कठोरता के साथ पालन किया जाता है। इनके सांस्कृतिक द्रष्टि से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि ये रीतिरिवाज धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों से जुड़े हुए हैं। जो सामाजिक नियम के साथ-साथ उन पर धर्म का भय भी है। इसी कारण राजस्थानी जनजीवन में अभी परंपरा का निर्वाह हो रहा है।

बच्चे के जन्म के समय सूरज पूजना, जलवा पूजन, नामकरण संस्कार, मुंडन संस्कार, उच्चवर्ग में यज्ञोपवित संस्कार, विवाह से जुड़े रीति-रिवाज, विदाई, मुकलावा तथा अंतिम यात्रा रूप में मृत्यु पश्चात् जिन परंपराओं का निर्वाह किया जाता है, वे रीति-रिवाज ही कहे जाते हैं। जन्म और मृत्यु वाले घर में सूतक पालन, पर्दाप्रथा, संयुक्त परिवार, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था, विवाह के अवसर पर दहेज देना आदि रीति-रिवाज के अंतर्गत आता है। औसर-मौसर का आयोजन भी राजस्थानी संस्कृति की विशेषता मानी जा सकती है। बालविवाह राजस्थानी जनजीवन की विशेषता रही, जहाँ छोटे बच्चों का अबोध अवस्था में विवाह कर दिया जाता है। यद्यपि कानूनी द्रष्टि से इन्हें असंवैधानिक घोषित किया गया है। सती प्रथा की जो परंपरा रही उसे भी अवैध घोषित किया गया है।

राजस्थान के सांस्कृतिक परिवेश में जातियों का विशेष महत्व है जो कठोर बंधन है। जाति से बाहर खान-पान करना, संबंध बनाना, अंतर्जातीय विवाह जैसी प्रथा नहीं है।

(v) रहन-सहनः

'सादा जीवन उच्च विचार' इसी विशेषता को राजस्थानी संस्कृति ने ग्रहण किया है। यहाँ का जन अत्यंत सीधा और भोला है इसलिए रहन-सहन भी अत्यंत सादा और सरल है। विपरीत परिस्थितियों में अपना धैर्य व साहस नहीं छोड़ते। व्यवहार में अत्यंत गंभीर और विचारों में गहरापन है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय खेती होने की वजह से जीवन कृषि पर आधारित माना जा सकता है। पशु ही मनुष्य के जीवन का आधार, रोजगार का आधार, जीवन का लक्ष्य हैं।

(vi) खानपानः

आर्थिक द्रष्टि से यद्यपि अधिक समृद्ध नहीं रहा फिर भी खान-पान की द्रष्टि से यहाँ के भोजन में विविधता है। साधारण रूप में ग्राम्य जीवन में बाजरा, गुड़, घी, छाछ, राबड़ी और सब्जी में प्याज, मिर्च, मूली का प्रचलन विशेष रहा है। शहरी जीवन में गेहूँ तथा खास मौकों पर मिष्टान एवं चटपटे भोजन का महत्व है। लापसी, हलवा, चूरमा, लड्डु, जलेबी, ठोर, मालपुए, घेवर यहाँ की प्रसिद्ध मिठाइयाँ हैं। दालबाटी और चूरमा प्रसिद्ध भोजन है। कैर, सांगरी, कुमटिया, फलिया, बड़ियां व पापड़ भी राजस्थानी संस्कृति के परिचायक रहे हैं। अफीम राजस्थानी संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग रहा है। 'अमल' के अभाव में यहाँ किसी भी कार्य,

बैठक, भेंट को पूर्ण सफल नहीं माना जाता है। विशेष अवसरों पर मदिरापान भी किया जाता है।

फलों के रूप में 'बेर' प्रसिद्ध रहा है। साथ ही काचरा, ककड़ी, मतीरा (तरबूज) और खरबूजा भी राजस्थान के प्रसिद्ध फल कहे जा सकते हैं। तदुपरांत केला, आम, जामुन, अमरूद का प्रयोग भी होता है।

(vii) वेशभूषा (परिधान) :

राजस्थान प्रदेश यहाँ के निवासियों की वेशभूषा परिधान के कारण बहुत प्रसिद्ध है, जिसके कारण उनकी तुरंत पहचान की जाती है। पुरुषों में बंडी, कुर्ता, कमीज, धोती और पगड़ी का रिवाज रहा है। साधारणतया पहनावे से पता चलता है कि व्यक्ति कौन-सी जाति व क्षेत्र का है।

स्त्रियों की वेशभूषा में रंगों की विविधता तथा एक रंग के साथ दूसरे रंग का मेल विवेक और ज्ञान का प्रतीक है। रंगों की विविधता जीवन के आनंद और प्रसन्नता का प्रतीक है। लहंगा, कुरती, ओढ़नी, कांचली, घाघरा, लूगड़ी यहाँ की स्त्रियों की प्रमुख पोशाक हैं जिसे खूबसूरत बनाने के लिए गोटा, किनारी, सितारे, सलमा और मगजी, पट्टों तथा मोतियों को प्रयोग उल्लेखनीय है। रंगों का चयन परिधान परंपरा यहाँ की मानसिकता को अभिव्यक्त करती है।

आभूषणों के प्रति मोह पुरुष एवं स्त्री दोनों वर्गों को है। गले में हार, तिमणिया, हाथों का चूड़ा, कड़े, चूड़ियाँ, पाँव में कड़े, कड़ियाँ, पायल, कानों में लूंग, बालियाँ, झुमके, नाक में नथ, सिर में बोर, कमर में कंदोरा आदि मुख्य आभूषण हैं। पुरुष कानों में लूंग, मुकरियाँ, हाथों में कड़े, गले में माला, हार आदि धारण करते हैं।

श्रृंगार की द्रष्टि से महिलाएँ शरीर को गुदवाती हैं साथ ही साथ दांतों में सोने को मढ़वाना आदि प्रमुख रहे हैं।

(viii) मनोरंजनः

जीवन के प्रति आनंद लोकजीवन में कभी कम नहीं हुआ। आखेट राजस्थान का प्रमुख मनोरंजन माना जाता है। सिंहो, चित्तों, सूअरों, जंगली हाथियों, गैंडों, हिरणों, खरगोशों, तितरों आदि का शिकार करना आनंद के साधन स्वीकृत किए गए हैं। क्षत्रिय समाज में इनका प्रचार अधिक रहा है।

चौपड़-पासा भी मनोरंजन का साधन रहा है, जिसका राज परिवारों से लेकर जनसाधारण में प्रचलन रहा। साथ-साथ 'शतरंज' भी महत्वपूर्ण स्थान लिए रही। तलवार, लाठी, तीर चलाना इत्यादि सोद्देश्यपूर्ण मनोरंजन थे। तदुपरांत कबड्डी, कुश्ती, संतोलिया, गुल्ली-डंडा बालकों के खेल साधन थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनोरंजन के साधन विविधता को लिए हुए राजस्थानी संस्कृति के परिचायक हैं।[1]

---

1. राजस्थानी भाषा : साहित्य संस्कृति - डॉ. कल्याणसिंह शेखावत

राजस्थानी लोकसाहित्य को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ

(क) प्राकृतिक परिवेशः

राजस्थान की प्राकृतिक विशिष्टताओं की झलक यहाँ के लोक साहित्य में देखी जा सकती है। किसी भी स्थान की प्राकृतिक परिस्थिति वहाँ के जनमस्तिष्क पर असर करती है। परिणामतः संस्कृति भी उनसे संचालित होती है। राजस्थान के जन परिश्रमी, साहसी एवं दृढ़ होते हैं। चित्रकला, संगीत तथा कविता में इनकी रुचि है। रुढ़िवादिता, धर्मभीरुता राजस्थानी जनमानस की विशेषताएँ हैं। स्वामीभक्ति तथा अतिथिसत्कार इनके विशेष गुण हैं। राजपूत जाति की वीरता भारत प्रसिद्ध है। राजस्थान की अरावली पर्वतमाला ने यहाँ के निवासियों को दृढ़ता और अचलता का संदेश दिया और यहाँ के टीलों ने उसे मार्दव एवं शीघ्रगामिता के गुण की शिक्षा देकर क्षणभंगुर जीवन का सदुपयोग करने की प्रेरणा दी है।

राजस्थान उष्ण प्रदेश है। जिसने राजस्थानी जन में शैथिल्य और विलासप्रियता के गुण उत्पन्न किए हैं। मदिरा, अफीम आदि नशों का प्रयोग उष्ण जलवायु जनित, विलासिता के दुष्परिणाम हैं। राजस्थानी लोकसाहित्य में भी 'मदिरा', 'अफीम' प्रविष्ट हो गए हैं। 'पाबूजी' लोकगाथा में 'डामा' अधिक अफीम पीने के कारण ही प्रसिद्ध है। 'फूल शराब' का उल्लेख भी लोकगाथा में प्रचुर है। राजस्थान के पीले टीले राजस्थानी वीरों की केसरिया पगड़ी के प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। लोक साहित्य में भी वीरों की वेशभूषा केसरिया रंग की वर्णित है।

राजस्थान में जलाभाव है। जिसने राजस्थानी जन-जीवन को रंगप्रिय बना दिया है। ये रंगप्रियता त्यौहारों और उत्सवों में देखी जाती है। जब चारों ओर सतरंगी वस्त्र इंद्रधनुष बन छा जाते हैं तब रंगीला राजस्थानी गा उठता है -'मेले तुम्हारा बड़ा मजा आया, लहरिया भीग गया है और रंग गालों पर बह आया है।'[1] जलाभाव राजस्थानी लोक साहित्य में जगह-जगह व्यक्त हुआ है, ढोला-मारु लोकगाथा में यहाँ का जलाभाव और वनस्पतियों का वर्णन है।[2]

(ख) ऐतिहासिक परिवेशः

राजस्थान 'वीरभूमि' के गौरवपूर्ण अभिधान से मंडित है। मान-मर्यादा पर सर्वस्व बलिदान करने वाले वीरों और जीवित अग्निस्नान करने वाली सतियों ने राजस्थान को अमर बना दिया है। राजस्थान का अतीत वीरता और शौर्य का है। कविवर सूर्यमल मिश्रा ने इस वीर संस्कृति के मंत्रों का गान किया है।[3] 'अपनी धरती नहीं देनी' यहाँ का मूल मंत्र है। वीर पति की पूजा और सतीत्व में राजस्थान की नारी विश्वविश्रुत है। आदर्श वीर और आदर्श नारी राजस्थानी लोकसाहित्य के वर्ण्य हैं। वचन निर्वाह और गो-रक्षा के लिए मर मिटने वाले वीरों के चरित्र राजस्थानी लोकगाथा में वर्णित हैं। इस द्रष्टि से 'पाबूजी', 'निहालदे सुलतान',

1. ''मेला रे थारी मजो बोत आयो, लैर्‌यो भीग्यो टपक टपक रंग गालां पै छायो''
2. ''बालू बाबा देराडो पतानी हंदी तांति पाणी केरे कारणै प्रिय छंडै अधराति ॥
   जिण भुई पन्नग पीयणा, कयर कंटाला रुंख। आके फोगे छांहड़ी हूँ छां भांजै भूख ॥
3. 'इला न देणी आपणी' तथा मुंहगा देसी झूंपडा जे घर होसी नाह'

'गोगाजी', 'बगड़ावत' आदि उल्लेखनीय हैं।

(ग) धार्मिक परिवेशः

धर्म की द्रष्टि से राजस्थान वैसा ही है जैसा कोई भी लोक हो सकता है। वैष्णव देवताओं के अतिरिक्त अनेक लोकदेवता भी स्वीकृत हैं। प्रत्येक गाँव में लोकदेवता के देवल मिलेंगे। सिद्धों और गोरखपंथी नाथों के प्रति राजस्थानी जन का विशेष आकर्षण है। इसी कारण राजस्थानी लोकसाहित्य में गोरखनाथ का महत्वपूर्ण स्थान है। लोकमानस उन सभी देवताओं को पूज्य मानता है जो उन्हें कष्ट से मुक्त कर दें। इसलिए लोकसाहित्य में सभी देवी-देवताओं का समावेश है। पीर,पैगम्बर, जादू-टोना, मंत्र-अभिचार सबका उल्लेख है।

राजस्थान का लोक साहित्य

लोक साहित्य के क्षेत्र की व्याख्या करते हुए डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है -

''लोक साहित्य में पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के संबंध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू-टोना, संमोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्मगाथायें, अवदान (legend), लोक कहानियाँ, गीत, साके (बैलेड), किवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं।''[1]

'लोक' शब्द का अर्थ व्यापक है इसलिए 'लोक' शब्द के अंतर्गत संपूर्ण मानवसमाज का समावेश किया जाना चाहिए। लोकसाहित्य के अंतर्गत साहित्यिक रचनाओं का समावेश करना ही उचित होगा क्योंकि लोकसाहित्य का अर्थ लोक का साहित्य है।

राजस्थानी भाषा का लोकसाहित्य समृद्ध है। लोकसाहित्य की सभी विधाएँ संपुष्ट रूप से प्राप्त होती हैं। लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। लोकगाथायें स्वतंत्र पुस्तकों के रूप में और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। लोकनाटकों के संग्रह और उनके विवेचनात्मक अध्ययन भी प्रकाश में आए हैं। परंतु लोक साहित्य लोक की ही भाँति विशाल एवम् वैविध्यपूर्ण है। अतः इनके संग्रह में धीरज एवम् परिश्रम की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। राजस्थानी लोक साहित्य का अध्ययन राजस्थान का ही अध्ययन है। लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं के अध्ययन से पूर्व उनका वर्गीकरण देखना महज जरुरी है।

1. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 4-5

(अ) लोक साहित्यः

✻ लोकगीत

- धार्मिक लोकगीत

    १. संस्कारों के लोकगीत

    २. देवी-देवताओं के लोकगीत

    ३. व्रतों के गीत

    ४. रातीजगों के और स्फुट गीत

- मनोरंजनात्मक लोकगीत

    १. त्यौहारों के गीत

    २. ऋतुओं के गीत

    ३. क्रीड़ाओं के गीत

    ४. फुटकर गीत

✻ लोक कथाएँ

१. नीति कथाएँ

२. व्रत कथाएँ

३. प्रेम कथाएँ

४. मनोरंजक कथाएँ

५. दन्तकथाएँ

६. पौराणिक कथाएँ

७. विविध विषयक कथाएँ

✻ लोक कथा काव्य (पवाड़े)

१. धार्मिक लोक कथा काव्य

२. ऐतिहासिक लोक कथा काव्य

३. विविध विषयक लोक कथा काव्य

✻ लोकनाटक

१. धार्मिक लोकनाटक

२. ऐतिहासिक लोकनाटक

३. प्रेमाख्यान परक लोकनाटक

४. विविध विषयक लोकनाटक

* कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ आदि
  १. नीति संबंधी
  २. सामाजिक
  ३. धार्मिक
  ४. ऐतिहासिक
  ५. स्थान और जाति संबंधी
  ६. विविध ज्ञान संबंधी

लोक साहित्य का वर्गीकरण देखने के पश्चात् अब इसकी विधाओं का एक-एक कर अध्ययन देखेंगे-

(1) लोकगीत :

राजस्थानी लोकगीत राजस्थानी जनता के स्वाभाविक साहित्यिक उद्‌गार हैं, जिनका प्रादुर्भाव सुख-दुःख, वीरता और हर्ष-शोक आदि विविध अनुभूतियों के परिणामस्वरूप हुआ है। राजस्थानी लोकगीत विविध विषयों से अनुप्राणित हैं। यहाँ के जीनजीवन में शिशु के जन्म से लेकर अनेकानेक जीवनावसरों तक में गीतों का सहयोग है। लोकगीतों का विस्तृत विवरण हम तीसरे स्वतंत्र अध्याय में आगे देखेंगे। यहाँ संक्षिप्त में विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। हमारी द्रष्टि से राजस्थानी लोकगीतों को इस रुप में विभक्त किया जा सकता है-

(क) ऋतु संबंधी गीत :

इस वर्ग के अंतर्गत सभी ऋतुओं से संबद्ध गीतों को रखा जा सकता है। वर्षा, शीत, बसंत, ग्रीष्म आदि ऋतुओं के सौंदर्य को चित्रित करने वाले अनेकों गीत राजस्थान में प्रचलित हैं।

(ख) प्रतिदिन जीवन से संबंधित गीत :

श्रम और संगीत के स्वाभाविक संबंध ने गीत को नित्य जीवन के क्रियाकलापों से जोड़ दिया है। राजस्थानी गृहिणी अपने दैनिक कार्यों - कुएँ से जल लाना, झाडू देना, चक्की पीसना आदि को गीतों की मधुर छाया में संपन्न करती है। उदाहरणतः पणिहारी गीत एवं चरखा चलाते समय गाया जान वाला गीत इस वर्ग में रखा जाएगा।

(ग) देश प्रेम के गीतः

जैसा कि कहा जा चुका है, राजस्थानी जनमानस मातृभूमि प्रेम से आप्लावित है, अतः देशप्रेम के अनेक गीत मिलते हैं। इनका मूल स्वर 'ओज' होता है अतएव इनके लिए भिन्न वर्ग उचित है। 'वालो देश' गीत उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

(घ) विशिष्ट पर्वों पर गाये जाने वाले गीतः

पर्वों, उपवासों, रात्रि जागरणों पर गाए जाने वाले असंख्य गीत राजस्थान में मिलते हैं। इन सारे गीतों को इस वर्ग में रखा जा सकता है।

(ङ) संस्कार विषयक गीतः

जन्म, नामकरण, यज्ञोपवित और विवाहादि के अवसरों पर गाए जाने वाले गीत इस वर्ग में रखे जा सकते हैं। शिशु-जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले राजस्थान के 'जच्चा' और 'पीलो' गीत इसी वर्ग के हैं।

(च) पारिवारिक संबंध विषयक गीतः

इस वर्ग में भाई-बहिन के प्रेम, ननद-भौजाई, पति-पत्नी, सास-बहू आदि से संबंधित गीत हैं। उदाहरणार्थ राजस्थान का 'पपईयो' गीत लिया जा सकता है। इस गीत में नवयुवक की विरह व्यथा व्यंजित है।

(2) लोककथाः[1]

मानव समाज में आप बीती कहने और परबीती सुनने की प्रवृत्ति रही है। इसी प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप कथाओं का उद्भव और विकास हुआ। कथाओं के द्वारा मानव समाज को पूर्वजों के अनुभवों से प्रेरणा प्राप्त करने और भावी पीढ़ियों को प्रेरित करने का भी अवसर मिलता है। साहित्य की सभी विधाओं का मुख्य आधार कथा है। गीत हो या कहावत, नाटक हो या गाथा सभी में कथातत्व महत्वपूर्ण है ही। लोककथा में कथातत्व ही प्रधान है। राजस्थानी साहित्य में लोककथा को 'वात' कहा जाता है। 'वात' का पृथक स्थान है। प्राचीन परंपरा से लोककथा का कथा-श्रवण यहाँ प्रसिद्ध है। मध्यकालीन राजघरानों में तथा सामंतों के यहाँ कथक्कड़ रहते थे जिनका कार्य कहानी कहना ही था। कथा कहना भी कला है - अपनी विशिष्ट शैली के कारण कथक्कड़ श्रोता के साथ एकात्म्य स्थापित कर लेता है। कथा का सौंदर्य उसके श्रवण में ही है। कथा के मौखिक रूप में कथाकार को विस्तार की सुविधा रहती है और भावनाओं को अनुभवों द्वारा व्यक्त करने की सरलता भी। कथा का प्रवाह जीवन की भाँति अविच्छिन्न है। अतएव इतिहास, समाज, दर्शन, शिक्षा, धर्म, राजनीति, आचार-विचार विषयक अनेकानेक जीवन प्रसंगों का समावेश लोककथा में हो जाता है। लोककथाएँ आत्मानुरंजन के साथ नैतिकता का संदेश भी देती हैं। परंतु लोककथा का संदेश 'कान्तासम्मित' उपदेश विधि में ही है। इसमें चित्ताकर्षण का गुण विद्यमान है। इसमें आधुनिकतम मनुष्य का लोकमानस भी रुचि लेता है। लोककथाएँ अभिजात्य साहित्य की प्रेरणा स्त्रोत हैं। पं. सोमदत्त रचित कथासरित्सागर भी लोककथाओं का वृहत्त कोष है।

राजस्थानी लोककथाओं में 'वात' के साथ-साथ गद्य के अन्य रूप ख्यात, विगत, वचनिका आदि हैं। ख्यात से तात्पर्य ऐतिहासिक तथ्यों से पूर्ण वर्णन है। किसी घटना अथवा वस्तु के ब्यौरेवार विस्तृत वर्णन को

1. राजस्थानी साहित्य का इतिहास - डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया

'विगत' कहा जाता है। 'वचनिका' में तुकान्त गद्य के साथ अलंकृत साहित्य सौन्दर्य की प्रधानता रहती है।

लोककथाओं का वर्गीकरण डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने इस भाँति किया है-[1]

(1) नीति कथा,
(2) व्रत कथा,
(3) प्रेम कथा,
(4) मनोरंजक कथा,
(5) दंतकथा और
(6) पौराणिक कथा।

राजस्थानी लोककथाओं का वर्गीकरण बालकथाएँ, व्रतकथाएँ,ऐतिहासिक कथाएँ और मनोरंजक कथाओं के रूप में भी किया जा सकता है। राजस्थान में प्राचीन काल से ही लोक कथाओं के संकलन एवं लेखन की परंपरा रही है जिसके परिणामस्वरूप हजारों राजस्थानी लोककथाएँ हस्तलिखित ग्रंथों में लिपिबद्ध रूप में प्राप्त होती हैं। 'रामायण', 'महाभारत', 'उपनिषद', पुराण, कथासरित्सागर, सिंहासन बत्तीसी, शुकबहुत्तरी, पंचतंत्र और हितोपदेश आदि से संबद्ध अनेक कथाएँ राजस्थानी साहित्य में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती हैं। राजस्थानी लोककथाओं में प्रेम संबंधी कथाओं का भंडार है, वीर पुरुषों की कथाएँ भी बहुप्रचलित हैं। व्रत उपवासों की भी विशिष्ट कथाएँ हैं जिन सब में लोकमानसीय तत्व प्रमुख है। राजस्थानी लोककथा का विषय मूलक वर्गीकरण निम्न रूप से किया जा सकता है-[2]

(1) ऐतिहासिक वीरों से संबंधित कथाएँ,
(2) प्रेम विषयक कथाएँ,
(3) धार्मिक (देवताओं एवं पौराणिक) कथाएँ,
(4) नीति कथाएँ,
(5) हास्य कथाएँ,
(6) कुतुहल प्रधान कथाएँ।

अब वर्गीकरण के पश्चात् एक-एक कथाओं का अध्ययन करेंगे।

(1) ऐतिहासिक वीरों से संबधित कथाएँ:[3]

वीरता संबंधी कथाओं में दुर्ग वर्णन, हाथी, घोड़े, पैदलों, अस्त्र-शस्त्रों और युद्ध संबंधी अन्य साज सज्जाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। दुर्ग पर शत्रु के चढ़ाई करने का उत्साहपूर्ण वर्णन विशेष रूप से मिलता है। साथ ही युद्ध प्रारंभ होने पर योगनियों के नृत्य, पिशाचों की उछलकूद, शिव और चंडी के आगमन की कल्पना भी कथाकारों ने कर ली है। वीरों की प्रसन्नता और कायरों का कंपन भी ऐसी कथाओं में मिलता है।

---

1. लोकसाहित्य की भूमिका - डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय
2. राजस्थानी साहित्य का इतिहास - डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया
3. राजस्थानी साहित्य का इतिहास - डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया

घायलों के कराहने, रुण्ड-मुंडों के कट कर गिरने, कबन्धों के लड़ने, शोणित की सरिता बहने, गिद्धों के मंडराने, आकाश में विमानों में उड़ती हुई अप्सराओं द्वारा वीरों के वरण में प्रतिस्पर्धा करने तथा वीरांगनाओं के सती होकर प्रियतम का अनुसरण करने का जैसा वर्णन राजस्थानी काव्य को छोड़ अन्यत्र दुर्लभ है। वीरता संबंधी कथाओं में हमें कर्तव्यपरायणता, धैर्य, कष्ट सहिष्णुता, प्रतिज्ञा पालन, देश सेवा, सत्यवादिता, शरणागत रक्षा और परोपकारादि की प्रेरणा मिलती है।

'वीरमदे सोनीगरा री वात', 'प्रतापसिंघ मोहकमसिंघ री वात', 'राव चूण्डे री वात', 'राठौड़ अमरसिंह गजसिंहोत री वात', 'पाबूजी री वात' आदि वीरता संबंधी प्रसिद्ध कथाएँ हैं।

राजस्थान प्रदेश में 'बात' और 'ख्यात' की समद्ध परंपरा रही है। जन और धन की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर देने वाले वीरों, सतीत्व रक्षक नारियों आदि के चरित्रों के आधार पर अनेक बातें लिखी गईं। यहाँ के नर-रत्नों ने मान के मूल्य को सदैव समझा है। कैसी बातों से लोगों को नीति की बातें बतायी जाती थीं। इस वर्ग में रखी जाने वाली कथाएँ प्रदेश-विशेष तक सीमित होती है। इन कथाओं के माध्यम से स्थानीय प्रतिभाओं एवं स्थानीय धरातल की विशेषताओं को उभारा जाता है। ऐतिहासिक प्रधान इन बातों में ही राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है। इनमें हमें तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों का बोध होता है। 'जगदेव पंवार री वात' त्याग के क्षेत्र में एक अद्‌भुत कीर्तिमान स्थापित करती है। यहाँ संक्षेप में 'पाबूजी री वात' और 'वीर सजना' की बात प्रस्तुत की जा रही है।

'पाबूजी री वात' :[1]

पाबूजी राजस्थान में एक प्रसिद्ध वीर हो चुके हैं। इनके चमत्कारों की अनेक कथाएँ इस प्रदेश में प्रचलित हैं। पाबूजी का जन्म मारवाड़ के राठोड़ वंश में विक्रम संवत 1313 वि. (1370 ई.) में हुआ था। इनके पिता धाँधल मारवाड़ के राव धूहड़जी के छोटे भाई थे। आपने अपनी प्रतज्ञा का पालन करते हुए गायों की रक्षा में संवत 1337 वि. (1397 ई.) में अपने प्राणों का बलिदान कर दिया।

प्राचीन भारत में धर्मशास्त्रों का यह वचन बड़ी दृढ़ता के साथ पालन किया जाता था। प्रत्येक क्षत्रिय, वीर पुरुष गो-ब्राह्मण की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान करना अपना गौरव व कर्तव्य समझता था। इसी कर्तव्य की भावना से प्रेरित हो पाबूजी तथा गोगोजी आदि वीर पुरुषों ने गायों की रक्षा हेतु अपने जीवन की आहुति दे दी थी।

मध्यकाल में जायल (राजस्थान) में जिंदराव खीचीं नामक व्यक्ति राज्य करता था। उसके राज्य में देवल नाम की एक चारणी निवास करती थी। उसके पास केसर नामक एक उत्तम जाति की घोड़ी थी। जिंदराव खींची ने इस घोड़ी को अपने लिए माँगा परंतु चारणी ने उन्हें देने से इन्कार कर दिया। कुछ दिनों पश्चात् पाबूजी के माँगने पर उन्हें वह घोड़ी दे दी। इससे जिंदराव अप्रसन्न हुआ और देवल को अनेक प्रकार से कष्ट देने लगा। चारणी ने पाबूजी से यह वचन लिया था जब उस पर कोई आपत्ति आएगी तब वे शीघ्र ही

2. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत (राजस्थानी लोकगीत)

उसकी रक्षा करेंगे। कुछ वर्षों पश्चात् पाबूजी अमरकोट के सोढ़ी के यहाँ अपना विवाह करने के लिए गए थे। इस अवसर को पाकर जिंदराव ने चारणी की गायों को घेरकर उन्हें ले जाने लगा। इससे चारणी रोती हुई अमरकोट पाबूजी के पास जा पहुँची और अपना दुःखड़ा रोकर कहा।

उस समय पाबूजी अपनी भावी पत्नी संग विवाह वेदी पर बैठे थे और चार फेरों (सप्तपद)में से दो भावरें ले चुके थे। चारणी का विलाप सून पाबूजी का हृदय द्रवित हो उठा। सब घरवालों के बहुत समझाने-बुझाने के बावजूद न्होंने किसी की बात न मानी और विवाह का गठबंधन तोड़ विवाहवेदी से उठकर, घोड़ी चढ़कर गायों की रक्षा के लिए चल पड़े। जिंदराव के साथ गायों के पुनरुद्धार के लिए उनका घमासान युद्ध है। अंत में पाबूजी ने इसी पुण्यकार्य में अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी। राजस्थान में पाबूजी की यह कथा बड़ी लोकप्रिय तथा प्रचलित है। वे लोक देवता के रूप में पूजे जाते हैं और अनेक गाँवों में उनके देहरे (मंदिर) पाए जाते हैं जिनमें घोड़े पर चढ़ी हुई उनक मूर्ति पूजी जाती है। इनकी लोक गाथा का कुछ अंश नीचे दिया जाता है-

''काकड़ में चरै छी वै देवल केरी गाय।
कोई, चरती तो गायां - कै जायर खींची घेरो घालियो।
आड़ा तोः फिर्‌या छा ऊदो-दूदो दोनू ग्वाल।
कोई, बीच में पड़्यो छो वो देवल चारण को सायबो।
खींची नै कढ़ायी छै वाँ;
करणी मा की आण।
कोई, दुहाई तो दीनी छै वाँ पाबूजी राठोड़ की।

×××××××

इसके अलावा वीर पुत्री 'सजना' की अमर गाथा की कुछ पंक्तियाँ देना चाहूँगी जिसने अपने बूढ़े पिता की इज्जत की रक्षा की।

बूढ़े पिता ठाकुर के पास हाड़ेराव का परवाना आया। परतंत्र होकर नौकरी करना ठाकुर की स्वतंत्र प्रकृति के लिए असह्य था। कोई पुत्र होता तो उसे ही एवज में भेज दिया जाता। परंतु यहाँ तो एक ही लड़की थी। लेकिन यह लड़की अनेक पुत्रों की कमी को पूरा करने वाली थी। ऐसी ही पुत्रियों के लिए राष्ट्रकवि गुप्तजी ने लिखा है कि -

''सौ पुत्रों से अधिक जिनकी पुत्रियाँ लोक शीला।''

सजना ने पुरुष वेश धारण कर, राजा के यहाँ नौकरी करके किस प्रकार पिता के दुःख को दूर किया इस विषय का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन इस गीत में किया गया है। सजना ने पुरुष वेश में बारह वर्षों तक राजा के यहाँ नौकरी की। राजा ने उसके लिंग का निर्णय करने के लिए उसकी अनेक परीक्षा ली परंतु सजना सभी में उत्तीर्ण होती गई और अंत में पिता के पास आकर अपना वृत्तांत सुनाकर उनके कष्टों को दूर कर दिया।

''होगी सजन घुड़ले असवार।
दिन तो उगायो ए बाई, सजना बाबोजी रे देस में

उलँगी सजना समँद तलाब।
चुड़लो दिखायो जी बाई सजना बाबे हाथ रो।
उठ ओ बाबाजी, ढकियो फल सो खोल।
बारै बरसा री ओ बाई,
सजना कर आई चाकरी।''

(2) प्रेम विषयक कथाएँ:[1]

इस प्रकार की कथाओं के माध्यम से इस प्रदेश के प्रेमी युगलों की याद को सदैव ताजा रखा गया है। राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने प्रेम के क्षेत्र में शारीरिक वासना की अपेक्षा कर्तव्य को विशेष महत्व दिया है और अवसर आने पर कर्तव्य के लिए असीम त्याग किया है। ये कथाएँ लोक के कंठ का हार मानी जाती हैं। प्रेमी इन कथा चरितों के उदाहरण प्रस्तुत कर अपने प्रेम की उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहते हैं। बंगाल में पारो-देवदास, पंजाब में हीर-रांझा आदि का प्रचलन है। राजस्थान में प्रेमाख्यानक कथाओं की संख्या बहुत ज्यादा है। इन प्रेम कथाओं में बात सैणी-बींझाणन्द री, बींझे-सोरठ री, आभल खींवजी री, ऊमादे-भटियांणी री, गुलाब भंवर री, जलाल-बूबना री, जसमां ओडण री, ढोला-मरवण री, पन्ना वीरमदे री, रत्ना हमीर री, बाघै भारमली री, जेठवा ऊजली इत्यादि प्रमुख हैं।

ऐसी कथाओं में भवनों के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। विभिन्न पात्रों के हावोंभावों, वस्त्राभूषणों, हाथी, घोड़े, विविध सुगंधी पदार्थों आदि से संबद्ध वर्णन भी मिलते हैं। षट् ऋतु वर्णन का भी राजस्थानी प्रेमकथाओं में समावेश हुआ है। उद्दीपन रूप में प्रकृति का मोहक रूप प्रस्तुत किया गया है।

राजस्थान की प्रेम कथाओं में संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं का बहुत सुंदर चित्रण हुआ है। इन कथाओं में सर्वत्र प्रथम द्रष्टि प्रेम की महत्ता को प्रकट किया गया है। यहाँ संक्षेप में कुछ कथा अंश निम्न रुप है-

अद्वितीय रूपवती जसमा ओड-पत्नी थी। धारा नरेश भोज उस पर मुग्ध हो गया। उसे अनेक प्रलोभन दिखाए गए परंतु उसने पति प्रेम-त्याग को सदैव अश्रेयस्कर और हेय समझा। जसमा की प्रेमाग्नि में जलने वाले राजा की निम्न उक्ति कितनी मार्मिक है-

'सुणि जसमल! राजा कहै, मैं तो लागि दीठ।
जीवां तां विरचां नहीं, जाणि कपड़ै मजीठ ॥''[2]

पर जसमा का नीति-कथन तो और भी उपयुक्त प्रतीत होता है-

'राजा! रीत न छांडिजै, समवड़ करौ सनेह।
समवड़ सूं सुख पायजै, नीचां केहो नेह॥''[3]

---

1. राजस्थानी लोकसाहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण

2-3 राजस्थानी बाताँ, भाग 1, नरोत्तम स्वामी, पृ. 28

ऐसे ही 'जेठवा और उजळी की नायिका उजळी वर्षा की शीत से ठिठुरे जेठवे को अपने शरीर के ताप द्वारा एक प्रकार से नया जीवन देती है। उसे क्या पता कि जेठवा कौन है? कहाँ से आया है? और फिर जेठवे ने उसे कितना धोखा दिया, अपमानित किया, पर इससे उजळी के प्रेम पर क्या बुरा असर पड़ा ? वह तो प्रेमियों के संसार में अपना नाम अमर कर ही गई साथ ही जेठवे को भी अमर कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी प्रेमकथाओं में विविध प्रसंगों को उभारकर जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। राजस्थान में वीर मनस्विनी रानियों ने भी जन्म लिया है जिसमें 'उमादे रानी' जो 'रुठी रानी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह जैसलमेर के महा रावल लूणकरण की कन्या थी। इनका विवाह मारवाड़ के राजा राव मालदेव के साथ हुआ था। महारावल ने कन्या को दहेज के रूप में तत्कालीन प्रथानुसार बहुत सी दासियाँ दी थीं। इनमें भारमली नामक दासी अत्यंत सुंदर थी। राव मालदेव उसके अलौकिक सौंदर्य पर मोहित हो रानी से अधिक उससे प्रेम करने लगे। इससे रानी की मनस्विता को ठेस पहुँची और उसने दासी आसक्त पति से न बोलने की प्रतिज्ञा ली। राव जी उमादे को लिवाने गए पर वह साथ नहीं आई अतः खाली हाथ लौट आए। राजा ने मनाने के लिए आसाजी नामक बानठ को भेजा परंतु रानी अपनी हठ पर अटल व दृढ़ रही। वह राजधानी में न आकर एक गाँव में झोंपड़ी में आजीवन बिताते हुए दिन काटने लगी। जब रावजी का देहांत हुआ तब इस सती साध्वी रानी, जो मनस्विता की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी, ने अपने शरीर को अपनी चिता के साथ भस्म कर दिया। धन्य है देवी उमादे ! तुम्हारा उदाहरण संसार में मिलना कठिन है।

(3) धार्मिक (देवताओं और पौराणिक) कथाएँ:[1]

हमारा देश धर्म परायण देश है, अतः हमारे साहित्य में धार्मिक कथाओं का बाहुल्य है। संस्कृत से अनुवादित अनेक कथाएँ राजस्थानी में भी हैं। रामायण, महाभारत, विभिन्न उपनिषदों और पुराणों से संबद्ध कथाएँ राजस्थानी में बड़ी संख्या में मिलती हैं। इन कथाओं में देवी-देवताओं को भी साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार करते देखा जा सकता है। लोक ऐसी कथाओं के कथन-श्रवण से पुण्यलाभ होने की बात मानता है। ऐसी कथाएँ जनता में धार्मिक चेतना जागृत करने के लिए बनाई गई हैं। इनमें पृथ्वी के उद्‌भव, प्रलय काल, स्वर्ग वर्णन, पशुओं के जन्म आदि से संबद्ध कई कथाएँ मिलती हैं।

इनके अतिरिक्त राजस्थानी लोक में अनेक पुराख्यान प्रचलित हैं जिनके चरित नायक एक आदर्श जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इन पौराणिक आख्यानों में चरित नायकों का संबंध प्रत्येक देश के वासी अपने प्रदेश से जोड़ते दिखाई देते हैं। राजस्थान में निम्न कथाएँ ज्यादा प्रचलित हैं - राजा भोज री बात, बीर बिकरमादित री बात, भरतरी गोपीचंद री बात, गरु गोरखनाथ री बात, पलक दरियाव री बात, दमयन्ती री बात, किसन भगवान री बात, अंजना सती री बात आदि प्रसिद्ध हैं।

इनके अलावा किसी के व्रत विशेष के अवसर पर कही जाने वाली कथाएँ भी हैं जैसे भैया दूज, शीतलाष्टमी, अनंत चतुर्दशी आदि व्रत कथाएँ। विविध व्रतों और पर्वों आदि के अवसर पर स्त्रियाँ किसी एक

1. राजस्थानी साहित्य का इतिहास - डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया,
राजस्थानी लोकसाहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण

स्थान पर एकत्रित होती हैं। इन अवसरों पर कथाएँ कही जाती हैं। एक स्त्री कथा वाचन करती है और अन्य स्त्रियों का समूह कथा-श्रवण करता है।

धर्म के प्रति आस्था रखनेवाली राजस्थानी नारी के जीवन में व्रतों का अद्वितीय और आदरणीय स्थान है। यहाँ सप्ताह के प्रत्येक दिन और माह की प्रत्येक तिथि को कोई न काई व्रत पड़ता ही है। एक ही घरमें अलग-अलग देवताओं की अर्चना के लिए अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग दीपक रखे जाते हैं। किसी पेड़ के नीचे किसी देव की प्रतिमा के दर्शन हो जाएंगे। सारे देवताओं से संबंधित अनेक व्रत प्रचलित हैं जिनका पालन प्रायः गृहलक्ष्मी ही करती है। व्रतकथाओं में धार्मिक भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। इन व्रतकथाओं के प्रारंभ में प्रायः किसी भिखारी, लकड़ी बेचने वाले, मछुए आदि को व्रत की ओर प्रेरित होते दिखाया जाता है। जो अपनी कमाई आदि के पैसों से व्रत की सामग्री खरीदकर विधिवत व्रत करता है फलस्वरूप वह श्रीसंपन्न होता है। अधिक धनप्राप्ति पश्चात् प्रमादवश व्रतपालन में कमी आने पर देव विशेष के कोप का भाजन बनना पड़ता है। अपनी भूल सुधारता है और पुनः लक्ष्मी उसके कदम चूमती है।

अनेक बार, स्त्रियाँ महीने भर तक व्रत रखा करती हैं। इसे राजस्थानी में 'न्हावणौ' कहा जाता है। वे सवेरे जल्दी स्नान करती हैं और बाद में पीपल सिंचन का कार्य करती हैं। इस समय कही जाने वाली कथाओं में प्रतिदिन स्नान और वृक्ष को पानी देने के महात्म्य का चित्रण रहता है। राजस्थान प्रदेश के कुछ व्रतों में विशेष प्रकार का भोजन ही बनाया जाता है। कुछ व्रतों पर दही और सोगरा खाना, संतोषी माता के व्रत के दिन खटाई न खाना आदि। इन कथाओं का अंत भी विचित्र प्रकार से किया जाता है। सुखान्तता और प्राणीमात्र की मंगल कामना ऐसी कथाओं का अन्त की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

इनमें अधिक प्रचलित कथाएँ हैं - करवा चौथ, ऊभछठ, अणंत चउदस, इजयारस री बात, संतोषी माता री बात, सतनारांण भगवांत री बात, सांवण तीज री बात, पूनम री बात, गणेश चौथ री वात, जन्माष्टमी री कथा, सोमोती अमावस री बात आदि। अब आगे संक्षेप में कुछ कथाओं को मारवाड़ी भाषा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

करवा चौथ : चोथ को बरत कर जना एक पाट पर जल का लोटो रख और बानो निकाल कलिये माटी को करुबो रक्ख, करव म गेहूँ ढकण म चीनी रख नगदी रुपियो रखक रोली, चावल, गुढ़ चढ़ाव, रोलीस जल क लोट म और बानो निकालन क करव म साथियो कर १३ टिक्की देव रोली चावल स चीरस सब कोई टिक्का निकाल गनेश चोथ की मुरती होव तो रोली चोरच जल चढ़ाव गुड़ स जिमाव, तेरा दाना गेहूँ का हाथ म लेकर कहानी सुन लेव कहानी सुननक बाद करब पर हाथ फेर क सासुजी पगां लाग कर दे देव, १३ दाना और जल को लोटो रख देव, चाँद देख कर चान्दन अरम दे देव कहानी कनवली मीसराणी न गेहूँ और रुपियो दे देव चाँद म रोली चावल चुरमो चढ़ाव फेरी देव टीका निकाल पिछ जिम लेव। आपीक भैन बेटी गावन होव तो करवो भेज देव करव म गेहूँ और ढकन म चीनी नकदी रुपयो घालक करबा भेज देव।

रामनवमी : चैत सुदी नौमी न रामनवमी होव है रामनवमी क दिन १२ बजे रामचन्द्रजी का और रामायन की पूजन कर आरती कर भोज लगाव सब कोई परसाद लेब। अगर कोई क रामनवमी न वसना घालता होव तो बसना घाल लेव। बसना की पूजन करादेव।

देवसोनी ग्यारस : आषाढ़ उतरत की ग्यारस न देव सोवह। इसस या देवसो ग्यारस कुहाव ह। पीछ कार्तिक सुदी ग्यारसदेव उठ है। आषाढ़ को ग्यारस को व्रत कर। भगवान का नया बिछौना कर भगवानसैन कराव। जागरण कर। पुजा कर।

एकादशी व्रतः कार्तिक उतरत की एकादशी न देव ऊठणी जावह देव उठणी ग्यारस न देव मान्ड। जमीन म पानी स धोकर चुन और गेरूस मान्ड। पीछ उक ऊपर एक बठूओ रख देव। जल, रोली, मोली, चावल, फूल, गुड़, रुई, ४ सुहाली, ४ केला, १॥ रु. नगदी १। सेर चावल, गुवार की फली, मुली चढ़ाव १ दिवो चास देव और देव ऊठान का गीत गाव बधावा गाव।

सोमोती अमावस की पूजा : सवेरे उठ कर सूरज उगे पहली पीपल की तुलसीजी की पूजा करनी चाहिए और शिव पारवती जी की भी पूजा करनी चाहिये। जल, मोली, रोली, चावल, चन्दन, फूल, सिन्दुर, परसाद, दक्षिणां १ कवजो धूप दीपक, चास और १०८ परीक्रमा देव पीपल क जद १-१ परीक्रमा करता जाव और १-१ फल या पीसा रेजगी रुपियो मेवो साग कुछ भी पीपल क चढ़ाता जाव मन होव तो १ रकम की चीज चढ़ा देव १०८ परीक्रमा देन क बार चढ़ावो ब्राह्मण न दे देव और तुलसी क पारवती जी सिन्दुर चढ़ाव जिसम सिंदुर लेक आपकी माँक म माथम लगाव और कब की हे पारवती माता तुलसी माता हे देवी म्हान अमर सुहाग देईयो और १३ चीज गहणां चाहे कपड़ा बड़तन रुपीया आँपको मन होव सो १३ चीज सोमोनी की कर क ब्राह्मणांन दे देब सोमोती की और बिन्दायक जी की कहाणी पीपल क पास बैठ कर सुण।

भईया दूज : कार्तिक उतरत की दूज भैण भायां न गङ्गाजी नहाणो चाहिये। भइया दुज न आपक भाया न आपकी भैण जीमाव आपक हाथ स जिमाव टीको निकाल देव नारियल दे देव भाई आपकी भैणा न रुपिया दे देव भैण क हाथ स भाई जिमाता भायाँ की उमर बढ़ कष्ट कट।

अनंत चउदस : भादो उतरत की चोउदस न अनंत चउदस को बक्त होव। यदी कोई अनंत चउदस को वरत करतो होव या करबो लेव तो पुजा की और बरत की विधि पंण्डिताँ से पूछकर तैयारी कर लेव और चाँदी को सोन को या रेशम की चौदह गाँव को अनन्त बनाकर उसकी पूजा कर और बिन पैर लेव आरती प्रसाद कर कथा सुन। कथा सुन जद आपके सगले परिवार का आदमीयान बुलाकर कथा सुनाब।[1]

(4) नीति संबंधी कथाएँ:

संसार में जिन देशों में नीति साहित्य लिखा गया है उनमें भारत का स्थान मुख्य है। संस्कृत साहित्य में पंचतंत्र तथा हितोपदेश में कथाओं के माध्यम से नीति शिक्षा दी गई है। नीति संबंधी कथाओं में उपदेश परोक्ष रूप से दिया जाता है। अनेक राजस्थानी कथाओं में नीति मिलती है।[2] नीति कथाओं में बात मनाने की अचूक शक्ति होती है। ये श्रोताओं के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। इनमें विभिन्न नीतियों का निचोड़, सांसारिक सत्यों का सार, अनुभूत ज्ञान का आलोक, सुव्यवस्थित जीवनयापन हेतु मार्ग निर्देश आदि बातें पायी जाती हैं। कथन या वस्तुस्थिति का तर्क पुष्ट बोध करवा देने में ही इनकी उपादेयता है। इनका संदेश सभी द्वारा एवं सर्वत्र अतर्क्य भाव

1. बारह महिनों का त्यौहार (मारवाड़ी भाषा में) - चंपादेवी राजगढ़िया, पृ. 7, 22, 61, 111, 138,142, 237
2. राजस्थानी लोककथाओं के विषय में विशेष ज्ञातव्य हेतु द्रष्टव्य - वात करामात, राजस्थान की रसधारा, राजस्थानी साहित्य, संस्कृति - भाग 2, सं. डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया

से सहज स्वीकार्य होता है। इन कथाओं द्वारा दुराचारी को सदाचारी बनाया जा सकता है , मूर्ख के हृदय में ज्ञानज्योति जगाई जा सकती है। किसी कथा में शास्त्रोक्त नीति कथन का उल्लेख मिलता है तो अन्य में लोक प्रचलित नीति को स्थान मिला है। इन नीति कथाओं के माध्यम से प्रायः जनसाधारण को सद्व्यवहार की शिक्षा दी जाती है। ये नीतिप्रद कथन लोक को बुराइयों से बचाने में ढाल का काम करते हैं। अहंकारी का पतन अवश्यंभावी है, इस नीति कथन को 'म्हें गष्ठौ बढ़ावै' नामक कथा में सुंदर ढंग से पेश किया गया है -

एक कारीगर ने अपनी सूरत से हूबहू मिलती बीस प्रस्तर मूर्तियाँ निर्मित की। यमदूत मृत्यु के समय उन इक्कीस एक से व्यक्तियों को एक जगह पाकर स्तब्ध रह गए कि असली व्यक्त कौन है? अंततः यमराज ने वहाँ आकर मूर्तियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की तब निर्माणकर्ता का अहं जाग उठा और वह आगे आकर बोला कि इन भव्य मूर्तियों का निर्माण मैंने किया है। यमराज उसे मारकर ले गए और कहाँ कि 'मैं' ही मनुष्य के नाश का कारण है। इस कथा में नीति की बात को सरलता से प्रकट किया गया है। वैसे ही अन्य कथा-

एक बार एक संत के पैर में बिच्छु ने डंक मार दिया। दयालु संत ने उसे हाथ में उठा लिया तो ने पांच-सात बार डंक मार दिए। तभी क्रोधी शिष्य ने कहा कि मैं आपकी जगह होता तो बिच्छु को मार देता। संत ने कहा कि जब इतना छोटा जीव अपना स्वभाव (दुष्टता) नहीं छोड़ता तो फिर विवेकी मानव को अपना स्वभाव (अच्छाई) क्यों छोड़नी चाहिए? नीति भी यही कहती है कि दुष्ट के साथ सद्व्यवहार करने से दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़ देता है - जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोय तूं फूल।

इसके अतिरिक्त अनेक कथाओं में 'एकता में ही बल है', 'समय सामर्थ्य का निर्णायक है', 'मुसीबत में बल की अपेक्षा बुद्धि से काम लेना चाहिए' आदि नीति कथन मोतियों की तरह बिखरे पड़े हैं।

कभी-कभी नीति कथनों से पूर्ण कथाओं के शीर्षक भी नीति कथन ही हुआ करते हैं जो प्रायः पद्यात्मक रूप में होते हैं । जैसे कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

(1) संगत बड़ां री कीजिये, बहुत बहुत बढ़ जाय,
बकरी हाथी पर चढ़ी, चुग चुग कुंपळ खाय। (बूढ़ी बकरी री बात)

(2) हंसा उड सरवर गिया, अबै काग भया परधान,
यूं भोळा बिपर, सिंघ किणरा जजमान। (सिंघ अर बूढ़ै विपर री बात)

नीति कथनों से युक्त इन कथाओं का प्रधान उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना या उपदेश देना होता है। कभी-कभी इन कथाओं में मानव जीवन के किसी एक अंश को लेकर व्यंग्योक्ति की जाती है। नीति कथाओं के निर्माण में अवश्य ही लोक का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

(6) हास्य कथाएँ:[1]

राजस्थानी हास्य कथाओं में विभिन्न जातियों और पशु-पक्षियों को माध्यम बनाया गया है। नाई, जाट और गूर्जर संबंधी हास्य कथाएँ अधिक मिलती हैं। अनेक कथाओं में नाई के साथ किसी व्यक्ति के अपने

1. राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डॉ. पुरुषोत्तम मेनारिया

ससुराल जाने का वर्णन है। जिनमें अनेक हास्यात्मक प्रसंगों की सृष्टि की गई है।

एक चुहे-चुहिया की कथानुसार चुहिया को सवर्त्र निर्बुद्धि और हठधर्मी पात्र के रूप में चित्रित किय गया है। चूहे-चुहिया की गृहस्थी में हर बात में नमन करने वाले पति और घमंडी पत्नी पर करारा हास्य व्यंग्य किया गया है। घर का सारा कार्य करने के बाद चूहा अपनी रूपगर्विता पत्नी को इन शब्दों में मनाता है-

'चाल म्हारी रूपाळी नार
कचकचतौ सीरौ व्हैगौ त्यार।'

काम से कतराने वाली पत्नी को और क्या चाहिए - उसका उत्तर-

'चाल म्हारा भोळा जीव, थनै बुलावण आयौ पीव।
आईओ सायबजी आई, धणी-लुगाई रै कांई लड़ाई।'

(8) कुतुहल प्रधान कथाएँ:

इन कथाओं में कल्पना का वैभव होता है, ऐसी अनंत कथाएँ हैं। उदाहरण के लिए 'लखटकिया' की कथा ली जा सकती है।

(3) लोक नाटक (ख्याल साहित्य) :[1]

राजस्थान का लोकनाटक साहित्य भी महत्वपूर्ण है। राजस्थानी लोकनाटक का प्रदर्शन खुले रंगमंच पर होता है। इन लोकनाटकों में संगीत, नृत्य, वेष तथा संवादों की प्रयोग पद्धतियाँ मौलिक हैं। जब ग्राम के खुले भाग में या कस्बों के सार्वजनिक चौरस्तों पर नक्कारे की गंभीर गर्जना के साथ नक्कारी की खनक गूंजती है और सुरीली बारीक आवाज में नवीन वय का युवती वेषधारी युवक, अर्धरात्रि की शांति को चंचल बनाता हुआ जीवन की किसी मूल मनोवृत्ति को संगीतबद्ध कर अलापता है तो सहस्त्रों नर-नारी जीवन के व्यस्त क्षणों को भुलाकर आनंदविभोर हो जाते हैं। हीर-रांझा, दयाराम धाड़वी, राजा-रिसालू आदि ऐसे ही लोकनाटक हैं।

लोकनाट्य का लोकधर्मी होना सर्वश्रेष्ठ गुण है। लोकजीवन से उसका अंग-अंगी का नाता होता है। लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का उल्लेख स्वतंत्र रूप से इन नाट्यों में होता है। राजस्थान प्रदेश में पाए जाने वाले ऐसे अनेक नाट्य हैं जिनमें राजस्थानी जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है। इन नाट्यों के पात्रों की वेशभूषा एवं प्रदर्शनकला प्रादेशिकता के तत्वों से पूरी तरह प्रभावित है। लोकनाट्यों में कथानक के बंधन को नहीं स्वीकारा जाता। प्रस्तोता कथानक को तोड़ते-मरोड़ते रहते हैं।

लोकनाट्यों के पात्र सामाजिक प्रवृत्ति विशेष के प्रतिनिधि होते हैं। ये पात्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अलावा पात्रों में स्थानीय विशेषताओं के भी दर्शन होते हैं। लोकनाट्य व्यक्तित्व की छाप से रहित होते हैं। जैसे हमें यह ज्ञान नहीं कि रम्मत के स्वांगों का प्रारंभ किसने किया? औरतों द्वारा निकाली जानेवाली

1. राजस्थानी लोकसाहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण

बोलियों का निर्माण कब? कैसे? किसके द्वारा हुआ परंतु यह ज्ञात है कि राजस्थान में लोकनाट्य के रुप में प्रचलित 'ख्याल' विशिष्ट व्यक्तियों की देन है। ये 'ख्याल' किसी कर्त्ता की कृति होते हैं।

लोकनाट्यों पर स्थानीय प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है। स्थानीय रंग लोक-नाट्य की प्रभावात्मक शक्ति को द्विगुणित कर देता है। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र के विचार-

'लोकनाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक कथानकों, लोक विश्वासों और लोक तत्वों को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।'[1]

राजस्थानी लोकनाट्यों में वेशभूषा का अधिक ध्यान रखा जाता है, क्योंकि इस प्रदेश में जातीय स्तर भी वेशभूषा में अंतर आ जाता है। उदाहरणतः सेठ की वेंशभूषा अलग होगी तो दर्जी की और ढंग की, और बीके के कपड़े राजशाही के परिचायक होंगे।

लोकनाट्यों के कथोपकथन प्रायः पद्यात्मक होते हैं। इन पद्यों के बीच-बीच में गद्यावतरण भी होते हैं जो कथा को एक क्रम प्रदान करते हैं। लोकनाट्यों में दर्शकों की भी महत्ता है। अनेक स्थलों पर बोल के कौशल पर दर्शकगण 'वाह! वाह! कांई के दियौ, मार दियौ पापड़ बड़ियां वालै नें' आदि वाक्य बोल पात्रों को प्रोत्साहन देते हैं।

केवल मनोरंजन करना ही राजस्थानी लोकनाटकों का उद्देश्य नहीं रहा है। इनसे राजनैतिक पहलुओं पर भी प्रकाश पड़ता है। सामाजिक उत्तरदायित्वों का ज्ञान इन नाट्यों से ही होता है। सर्वसाधारण का नैतिक उत्थान भी इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। इनके कथानकों की विविधता दर्शकों के समक्ष विविध द्रश्य प्रस्तुत करती है जिससे सर्वसाधारण की ज्ञान वृद्धि होती है। कुछ कमियों के होते हुए भी राजस्थान मे लोकनाट्यों की एक समृद्ध परंपरा रही है।

राजस्थान में अनेक प्रकार के लोकनाट्यों का प्रचलन है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने अपने लेख[2] (परंपरा में प्रकाशित) में 31 प्रकार के राजस्थानी लोकनाट्य माने हैं पर इस वर्गीकरण में अलग-अलग क्षेत्र के ख्यालों को अलग-अलग वर्गों में रखा गया है, जबकि 'ख्याल' के नाम से एक ही वर्ग स्थापित किया जा सकता था।

यहाँ हम संक्षेप में कुछ प्रसिद्ध लोकनाट्यों का परिचय दे पायेंगे।

राजस्थान प्रदेश में निम्न रूपों में लोकनाट्य मिलते हैं:

(1) बालकों द्वारा किये जाने वाले नाट्य : राजस्थानी लोकनाट्य में बालकों द्वारा किये जाने वाले नाट्यों का विशेष महत्व है। अक्षय तृतीया के अवसर पर नन्हीं-मुन्नी बालिकाएँ ही वर-वधू का स्वांग लाती हैं। वर-वधू की साज-सज्जा के प्रायः सभी उपकरणों का प्रयोग इस समय किया जाता है। जिज्ञासु बाल हृदय इस प्रकार के 'स्वांगों' के माध्यम से यौवन व सांसारिकता का आनंद उठाने हेतु बाल प्रयास करते हैं। इसी प्रकार होली या दीपावली के दूसरे दिन (इस दिन को राजस्थान में रामासामा के नाम से पुकारते हैं) कोई

1. भारतीय नाट्य साहित्य, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ. 84
2. परंपरा 21-22, सन् 1966 में प्रकाशित डॉ. महेन्द्र भानावत के 'राजस्थान के लोकनाट्य' लेख में पृ. 2 से उद्धृत

बालक (12-16 वर्ष का) स्त्रियों के कपड़े पहन, घूँघट निकालकर अपने परिवार की बड़ी बूढ़ी औरतों के चरण स्पर्श (पगे लागणने) करने जाता है। बड़ों के पूछने पर साथ वाले लड़के उसे परिवार के किसी नवविवाहित सदस्य की पत्नी बताते हैं। वृद्धाएँ अखंड सौभाग्यवती का आशिष दे कुछ रूपया पैसा देती हैं। इन पैसों को बच्चे (लड़के) आपस में बाँट लेते हैं।

(2) **स्त्रियों द्वारा निकाली जानेवाली बोलियाँ:** जंवाई के आने पर गाँवों में पास-पड़ोस की स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। विविध गीत गाकर 'जंवाई' के 'लाड़-कोड़' करती हैं। इस अवसर पर वे अनेक प्रकार की बोलियाँ निकालती हैं, जिनमें हमें नाट्य तत्व मिलते हैं। कभी-कभी स्त्रियों कागज के 'कूटे' से बने विशिष्ट मुखौटों का प्रयोग कर स्वांग रचती हैं। इन बोलियों में 'बाप की बोली', 'दादे की बोली', 'धोबी-धोबिन की बोली', 'जाट-जाटणी की बोली' आदि प्रचलित हैं। बोली बोलने वाली स्त्री विशिष्ट स्वर में बोलती है जैसे पुरुष पात्रों में स्वर को कुछ ऊँचा करलेती है। 'जाट-जाटणी' की बोली निकालते समय जाटों में व्यवहृत होनेवाली भाषा का प्रयोग करती है। ये स्त्रियाँ घड़े, थाली आदि का प्रयोग आवश्यकतानुसार करती हैं। पात्रों के अनुरूप वेसभूषा भी पहनकर आती हैं। इनके मूल में मनोरंजन की भावना का प्राधान्य है। 'दादे की बोली' में ठाकुरशाही एवं शोषण के चित्र को प्रस्तुत किया है। धोबी-धोबिन की बोली में बताया कि ठाकुर साहबने कपड़े तो धुलवा लिए पर अभी तक पैसे नहीं दिए।

(3) **भांडों एवं बहुरुपियों के नाट्य :** राजस्थान में भांड जाति के लोग एवं बहुरुपिये काफी संख्या में प्रत्येक क्षेत्र में मिल जाते हैं। ये दोनो जातियाँ विभिन्न स्वांग लाया करती हैं। भांडों की एक यह भी विशेषता है कि वे विभिन्न मुख मुद्राएँ बनाकर लोगों को हँसाते रहते हैं। इनकी नाट्यकृतियों में उछलकूद की मात्रा अधिक होती है। ये विशिष्ट वेशभूषाओं का प्रयोग भी करते हैं। ये लोग प्रायः कालिका, सती, हनुमान, शिव, कृष्ण आदि के स्वांग लाया करते हैं। ये ही इनके जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन हैं।

(4) **कठपुतली :** कठपुतली प्राचीन काल से रंगमंच का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। लकड़ी की बनाई हुई इन पुतलियों का संचालन धागे से पट के पीछे बैठा सूत्रधार करता है। आज भारत में राजस्थान ही ऐसा प्रदेश है जहाँ कठपुतलियों का सर्वाधिक प्रचलन है। राजस्थान में इनके माध्यम से वीरों के चरित्र को उभारकर सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इनके माध्यम से युद्ध के दृश्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं। राजस्थान में कठपुतलियों के खेल में 'अमरसिंह का खेल' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसके अलावा इनमें मुगलकालीन राजपूत वीरों की कथाओं की झाँकियाँ देखने को मिलती हैं।

इन उक्त नाटकों के अलावा कई छोटे-बड़े नाट्यों का प्रचार राजस्थान प्रदेश में है। जोधपुर में होलिकोत्सव पर आयोजित होनेवाले डंयोंडि की गेर का विशेष महत्व है। इस गेर में विशिष्ट स्वांग लिए, विभिन्न वेशभूषा धारण करके, 'गेरिये' वृत्ताकार घूमते रहते हैं और अपने हाथ में थामी 'डंडियों' को आगे तथा पीछे वाले साथी की डंडियों से मिलाते रहते हैं जिससे एक विशिष्ट प्रकार की कर्णप्रिय ध्वनि उत्पन्न होती है।

ये विशेष वस्त्र धारण करते हैं जिसे 'आंगी' कहते हैं जो श्वेत रंग का होता है। गले से कमर तक का भाग शरीर पर पूर्ण रूप से फिट और नीचे का भाग घेरदार व ढीला रहता है। गेरियों के वृत्ताकार घूमने से अधोवस्त्र सुंदर घेर बनाता है।

HANSA MEHTA LIBRARY

गाँवों में कुछ ग्रामीणों द्वारा 'पट्टेदाव' भी किया जाता है। इस नृत्य नाट्य में केवल दो पात्र होते हैं जिनके हाथों में लाठी रहती है। एक पात्र दूसरे पर लाठी से प्रहार करने की चेष्टा करता है व दूसरा उन प्रहारों से बचने का प्रयत्न करता है। इसे 'लाठी की कलाबाजी' भी कहा जाता है।

कई वैवाहिक अवसरों पर राजस्थान में 'कच्छी घोड़ी' का नृत्य नाट्य किया जाता है। इनके माध्यम से घोड़े-घोड़ियों के युद्ध कौशल के दृश्य प्रस्तुत किए जाते हैं। नटों की कलाबाजियाँ भी राजस्थानी लोकनाट्य का अभिन्न अंग हैं। राजस्थानी लोकनाट्यों के प्रसंग में भीली समाज के गवरी-नृत्य को कदापि भूलाया नहीं जा सकता।

राजस्थानी लोकनाट्यों के रूप में सर्वाधिक प्रचार 'ख्यालों' का ही है। पिछले 400-500 वर्षों से अनेक ख्यालों का प्रणयन हुआ है। इनमें प्रमुख से किसी आदर्श चरित्र का जीवन चित्रित रहता है। यह एक विशिष्ट शैली में लिखा लोकनाट्य होता है।

राजस्थान में अनेक प्रकार के ख्यालों का अभिनय आज तक होता है। ख्यालों में मंडलियाँ गाँव-गाँव घूमती हुई अपना प्रदर्शन करती हैं। ख्यालों के लिए विशेष मंच की जरुरत नहीं। गाँव का चौराहा या चबूतरा ही मंच का काम दे जाता है। रात में मशालों अथवा गैस बत्तियों के प्रकाश में ख्यालों का प्रदर्शन होता है। ख्याल रातभर चलता है और दर्शक आनंद लेते हैं।

राजस्थानी ख्याल में काव्य, अभिनय, संगीत और नृत्य तत्वों का समान रूप से समावेश होता है। यह प्रधानतः गेय होता है। ख्याल में नक्कारा सारंगी और ढोलक, मंजीरा आदि वाद्यों का प्रयोग होता है। ख्याल बुलंद आवाज में गाया जाता है। ख्याल हमारे देश की प्राचीन नाट्य कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

श्री देवीलाल सांभर ने ख्यालों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) भवाईयों के नृत्य और कलाबाजी प्रधान नाट्य

(2) तुर्रा कलंगी, रम्मत, कुचामणी और चिड़ावा के काव्यप्रधान नाट्य[1]

(3) भीलों के गौरी जैसे कथोपकथन हीन मूक लोकनाट्य।

उक्त वर्गीकरण के दूसरे भाग में 'माच' का समावेश भी होना चाहिए।

(1) तुर्रा कलंगी : तुर्रा कलंगी शैली के ख्याल चित्तौड़, घोसूंडा और झालावाड़ क्षेत्र में प्रचलित हैं। इसके प्रवर्तक तुखनगीर, गोसांई और शाह अली फकीर माने जाते हैं। दोनों काव्य प्रतियोगिता के रूप में अपने दंगल लगाया करते थे। मंच पर तुर्रा वाले पुरुष वेश में और कलंगी वाले स्त्री वेश में प्रवेश करते हैं। दोनों दल काव्य, संगीत, नृत्य और अभिनय के साथ संवाद में एक-दूसरे को पराजित करने का प्रयत्न करते हैं। तुर्रा-कलंगी शैली में सीता स्वयंवर, रुक्मिणी मंगल, हरिशचंद्र आदि ख्याल प्रचलित हैं।

---

1. राजस्थानी लोकनाट्य, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, भूमिका, पृ. 8

(2) रम्मत[1] : रम्मत शैली के ख्याल बीकानेर में प्रचलित हैं। रम्मतों में हिड़ाउ मेरी की रम्मत बहुप्रचलित है। मोतीलाल ने अनेक रम्मते लिखी हैं जिनमें 'अमरसिंह राठौड़' प्रमुख है। रम्मतों के प्रारंभ में देवी-देवताओं की स्तुति होती है। तदुपरांत संगीत के साथ अभिनय और नृत्य प्रारंभ होता है। रम्मतें मुख्यतः होली के अवसर पर आयोजित होती हैं।

(3) कुचामणी ख्याल[2] : इस शैली के ख्याल मुख्यतः मारवाड़ में प्रचलित हैं। इसके प्रवर्तक लक्छीरामजी माने जाते हैं। लक्छीरामजी के ख्याल प्रकाशित हो चुके हैं और कुचामण के भाटों की मंडलियों द्वारा इनका अभिनय होता है। इनमें दूहा, लावणी, छप्पय, चौबोला और दुबोला का प्रयोग होता है। लक्छीरामजी के अनुरागी ख्याल की इस शैली को सुरक्षित किए हुए हैं।

(4) चिड़ावा और शेखावटी के ख्याल[3] : राजस्थान के शेखावटी क्षेत्र में चिड़ावा, खंडेला, सीकर और जाखल आदि स्थानों में चिड़ावा का अखाड़ा प्रधान है इसलिए शेखावाटी शैली के ख्यालों को चिड़ावा शैली के ख्याल भी कहा जाता है। चिड़ावा से ख्याल कर्ताओं में नानू और दूलिया प्रसिद्ध ख्याल कर्ता हुए हैं। शेखावाटी शैली के ख्यालों में जानकी, लगड़ी और भैरवी रंगत की लावणी और जोगिया, खड़ी और सोरठ रंगत के चौबोला का व्यवहार अधिक होता है।

डॉ. सोहनदान चारण ने लोक ख्यालों को वर्ण्य विषय के आधार पर निम्न वर्गों में विभाजित किया हैः

(1) पौराणिक ख्याल

(2) वीरताप्रधान ख्याल

(3) प्रेमप्रधान ख्याल

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोकख्याल सामूहिक संपत्ति होते हुए भी व्यक्ति विशेष की स्पष्ट छाप को लिये हुए हैं। इनकी विषय विविधता ने लोक के समक्ष विभिन्न दृष्टिकोण रखे हैं। सिनेमा और अन्य माध्यमों के प्रचार के कारण लोक की यह अमूल्य धरोहर मिटती जा रही है। अतः यह अत्यंत जरुरी है कि इन सभी ख्यालों को पारंगत व्यक्ति के द्वारा रिकॉर्ड किया जाय अन्यथा यह सब कालकवलित हो इतिहास की बात हो जाएगी। इन्हीं के माध्यम से हम अपने जीवन को पूर्व जीवन से जोड़ सकते हैं। सारतः कहा जा सकता है कि यो लोक ख्याल राजस्थानी समाज का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। इनमें आदर्श और यथार्थ का मंजुल मेल हुआ है।

(4) लोक गाथाः

लोकगीत में जहाँ जीवन की लघु भाव-लहरियाँ तरंगित होती हैं वहाँ लोकगाथा में जीवन-वैविध्य के दर्शन होते हैं। उदात्त चरित्र द्वारा महान आदर्श की स्थापना लोकगाथा का उद्देश्य है। राजस्थान का लोकगाथा साहित्य काव्यात्मकता, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनमें विषयों की विविधता है। जीवन का प्रत्येक पक्ष इनमें व्यक्त हुआ है। वीर, शृंगार, हास्य, करुण और निर्वेदादि भावों का सफल चित्रांकन लोकगाथा में सहज सुलभ है।

1-3. राजस्थानी साहित्य का इतिहास : डॉ. पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

आज लोकगाथा शब्द अंग्रेजी शब्द 'Ballad' (बैलेड) के समानार्थी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। अंग्रेजी का बैलेड शब्द लैटिन के ballare शब्द से निष्पन्न है। वेबस्टर के शब्द कोश में संज्ञा शब्द ballade का अर्थ a dancing song एवं क्रियापद ballare का अर्थ to dance दिया गया है। इसी कोश में ballade की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "A short narrative poem, especially such as is adopted for signing a poem part taking of the nature both of the Epic and the lyric."[1]

राजस्थान के विद्वान श्री सूर्यकरण पारीक ने बैलेड के लिए 'गीतकथा' नाम उपयुक्त समझा।[2]

लोकगाथा में ऐतिह्यवृत कल्पना के बिंदुओं से भी घिरे रहते हैं और धर्म तथा संस्कृति भी लोकविश्वासों एवं धारणाओं से आवृत्त होती है। लोकगाथाएँ दीर्घ गीत कथाएँ हैं जिनका उद्देश्य सर्वसाधारण का आमोद-प्रमोद करना रहा है।[3]

लोकगाथा का रचयिता अज्ञात रहता है। राजस्थान प्रदेश में मिलनेवाली लोकगाथाओं पर व्यक्ति विशेष की छाप नहीं है। आज किसी को भी ज्ञात नहीं है कि ये अमूल्य रत्न किस मानव की अनूठी देन है। समाज के कंठ पर सुशोभित होनेवाली ये हीरकमणियाँ सामूहिक प्रभाव से प्रभावित हैं। 'बगड़ावत' गाथा के माध्यम से इसके यश का प्रचार किसने किया? नगजी-नागवन्ती के प्रेम की पवित्र भावना को लोक तक किसने पहुँचाया? इन सभी का उत्तर पाना कठिन है।

राजस्थानी लोकगाथाओं के प्रारंभ में मंगलाचरण मिलता है। प्रत्येक मंगलाचरण में प्रथम गणेशवंदना मिलती है। तत्पश्चात् देवी-देवताओं की स्तुति की जाती है। लोकगाथाओं में सभी पौराणिक देवताओं एवं लोकदेवताओं की स्तुति का विधान है। लोकगाथाओं की परंपरा मौखिक रही है।[4]

राजस्थानी लोकगाथाओं के साथ लोकवाद्यों का प्रयोग भी होता है। लोकगाथाएँ एक गेय कथा होती है। कुछ राजस्थानी लोककथाओं के साथ एक निश्चित लोकवाद्य ही बजाया जाता है, यथा पाबूजी की पड़ के साथ रावणहत्थे का प्रयोग। गोपीचंद भर्तृहरि की दीर्घ गेय गाथाएँ भी किसी-न-किसी वाद्ययंत्र के साथ ही गायी जाती हैं। इन वाद्य-यंत्रों में रावणहत्था, डेरन, तन्दूरा, थाली, चंदा आदि प्रमुख हैं।[5]

इन लोकगाथाओं पर स्थानीय वातावरण की पूरी छाप रहती है। यहाँ के रहन-सहन, रीतिरिवाज, खान-पान, वेशभूषा सभी का वर्णन है। साथ ही स्थानीय निवासियों की मान्यताओं एवं धारणाओं का पूरा ब्यौरा इन गाथाओं मिलता है। यह समस्त स्थानीयता का प्रभाव है। राजस्थानी लोकगाथाओं में राजस्थानी प्रकृति का चित्रण भी मिलता है। ये गाथाएँ ऐसे स्वच्छ दर्पण हैं जिनमें यहाँ की प्रकृति एवं लोकमानस का सही प्रतिबिंब दिखाई देता है। इनमें वर्णित ऊँट और घोड़े इस प्रदेश की अमूल्य निधियाँ हैं।

राजस्थान में मिलनेवाली हर गाथा का अपना रूप है। सभी के पद्यात्मक गठन में अंतर है। इन सभी गाथाओं की कथा को कहने का ढंग भी अलग-अलग है। जिस ढंग से 'बगड़ावत' की गाथा गायी जाती है उस ढंग से तेजा नहीं गाया जाता और 'पाबूजी की पड़' का अपना ढंग है तो 'निहालदे सुलतान' का अपना।

---

1. Webster's New Twentieth Century Dictionary, Pg. 138
2. राजस्थानी लोकगीत, पृ. 78

3-5. राजस्थानी साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण

कहीं-कहीं कुछ लोकगाथाओं में व्यंग्य वाक्यों का प्रयोग होता है जो कथा नायक के लिए प्रोत्साहन एवं चुनौती देने का कार्य करते हैं। 'चौपड़ रो पवाड़ो' और 'तेताजी गाथा' में ये वाक्य ही कथा को अग्रसर करने का मूलाधार हैं।

राजस्थानी लोकगाथआओं में अन्तर्कथाओं की भरमार रहती है। ऐसी अंतर्कथाएँ प्रसंग-विशेष से संबंधित होती हैं। राजस्थानी लोकगाथाओं में सर्वसाधारण की समझ में आए ऐसे सरल सीधे चित्र पाए जाते हैं। इनमें ऐतिहासिक तथ्यों, पर प्राकृतिक तत्वों, जादुई शक्तियों, जाँच अभियोग की कथाओं, दैनन्दिन होने वाले क्रियाकलापों का अच्छा दिग्दर्शन किया गया है।

राजस्थानी लोकगाथाओं का भावात्मक महत्व एवं कलात्मक मूल्य अक्षुण्ण है। इनकी वाक्-शैली का सौंदर्य प्रशंसनीय है। गाथाओं में मिलनेवाली कल्पना की संपन्नता इसकी उल्लेखनीय विशेषता है। इनका महत्व प्राचीन संस्कृति के संरक्षक के रूप में भी है और नवीन सभ्यता एवं संस्कृति के उपादानों को ग्रहण कर विसकित होने की दृष्टि से भी है।

लोकगाथा पर कार्य करने वाले पाश्चात्य विद्वानों में किट्रिज, चाइल्ड, गूमर, होगार्ट, सिजपिक आदि प्रमुख हैं। किट्रिज के वर्गीकरण के अनुसार लोककथाएँ दो भागों में विभक्त हैं-

(1) चारण गाथाएँ (2) परंपरागत गाथाएँ

और प्रो. गूमर ने लोकगाथा के 6 वर्ग बनाए-

(1) प्राचीनतम गाथाएँ (2) कौटुंबिक गाथाएँ (3) अलौकिक गाथाएँ
(4) पौराणिक गाथाएँ (5) सीमान्त गाथाएँ (6) आख्यक गाथाएँ

हमारे दृष्टिकोण में विषय की दृष्टि से राजस्थानी लोकगाथा का वर्गीकरण इस प्रकार होगा -

(1) वीरकथात्मक (2) प्रेमकथात्मक (3) रोमांच कथात्मक (4) निर्वेदात्मक (5) पौराणिक तथा विविध

(1) वीरकथात्मक[1] : इस वर्ग में उन गाथाओं को रखा गया है जिनका वर्ण्य कोई ऐसा वीर है जिसने परार्थ अपने प्राण दिए हों। इसमें राजस्थानी की ऐसी निम्नांकित 6 लोकगाथाओं को लिया है।

(क) बगड़ावत (ख) पाबूजी (ग) गोगाजी (घ) तेताजी (ङ) डूंगजी ज्वारजी (च) गलालेंग

प्रभाव ऐक्य की दृष्टि से इन लोकगाथाओं में 'वीर' ही अंगी रस है, अंग रूप में अन्य रसों के प्रसंग भी हैं।

(2) प्रेमकथात्मक[2] : राजस्थान की प्रेमकथात्मक लोकगाथाएँ अत्यंत मधुर हैं। शास्त्रीय रागों में बँधकर ये और भी प्रभावक हो उठी हैं। काफी, मांड, सोरठ आदि उपयुक्त रागस्वरों में इनका रूप अत्यधिक निखरा है। इस वर्ग में राजस्थान की निम्नलिखित प्रेमकथात्मक लोकगाथाएँ रखी गई हैं-

(क) ढोला-मारू (ख) जलाल-बूबना (ग) सोरठी (घ) नागजी-नागवंती

1-2. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत

(3) **रोमांचकथात्मक**[1] : इस वर्ग में राजस्थान की 'निहालदे-सुलतान' लोकगाथा को रखा गया है। इस लोकगाथा में सुलतान की वीरता का उत्कर्ष होते हुए भी जादू, परियाँ, रूप परिवर्तन, आकाशगमन आदि अलौकिक एवं रोमांचक प्रसंगों का ही प्राधान्य है।

(4) **निर्वेदकथात्मक**[2] : इस वर्ग में गोपीचंद-भर्तृहरि लोकगाथाएँ हैं। राजस्थानी लोकगाथा साहित्य उर्मिल अथाह सागर है जिसमें विविध रंगों की भावोर्मियाँ हैं, संस्कृति के अनमोल मणि हैं और वीरचरित्र रूपी रत्न हैं। यहाँ की प्रेमगाथाएँ हृदय को वैसे ही द्रवित कर देती हैं जैसे चंद्र-चंद्रकांता मणिसमूह को।

उपर्युक्त सभी लोकगाथाओं के विशिष्ट गायक हैं। इन गायकों के अपने इष्ट हैं। कोई कोई गायक मात्र एक गाथा ही गाते हैं। कोई समय विशिष्ट में ही गाथा विशेष गाते हैं। इन गायकों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है-

(1) भोपा : राजस्थान के कथा-गायकों में भोपों का महत्वपूर्ण स्थान है। भोपे गाथागान के साथ-साथ कृषि कर्म भी करते हैं। आर्थिख दृष्टि से ये लोग विपन्न ही हैं। पृथक्-पृथक् भोपों के भिन्न इष्ट हैं। ये अपने इष्ट से संबंधित गाथा गाते हैं। राजस्थानी जनमानस में 'भोपा' का स्थान माननीय है। इष्टानुसार भोपे निम्न प्रकार के हैं-

(क) माताजी के भोपे - जी जीणमाता (सीकर) और करणीमाता के गीत गाते हैं। झाड़फूँक आदि भी करते हैं, पर्व के अवसर पर कपोलों के आर-पार भाला निकालकर जनता को चमत्कृत भी करते हैं।

(ख) भैंरुजी के भोपे - ये मशकवाद्य साथ रखते हैं। कटि में बड़े-बरे घुँघरू और शीश पर मयूरपंख का टोपा पहनते हैं। इनके इष्ट भैंरुजी है।

(ग) देवजी के भोपे - ये गूजर हैं और बगड़ावत लोकगाथा गाते हैं। इनके इष्ट देवजी नारायण हैं।

(घ) रामदेवजी के भोपे - ये कामड़ जाति के हैं। मंजीर वादन में दक्ष ये भोपे रामदेवजी के गीत गाते हैं। इनकी स्त्री पैरों और शरीर में बहुत से मंजीरे बाँध लेती है। पुरुष धूंतूरा बजाता है। इन भोपों को तेरहताली वाले भी कहते हैं। ये रुणीचा, पोकरण आदि स्थानों की ओर मिलते हैं।

(ङ) पाबूजी के भोपे - पाबीजी की पड़ बाँचते हैं। रावणहत्था इनका वाद्य है।

(च) गोगाजी के भोपे - ये भोपे 'गोगाजी' लोकगाथा गाते हैं। गाथा गायन में ढोल, काँसी का तथा डमरू का उपयोग करते हैं।

(छ) डूँगजी-ज्वार के भोपे - रावणहत्था पर 'डूँगजी-ज्वारजी' के गीत गाते हैं। इनका कथन है कि पुष्कर में डूंगासिंह ने इन्हें सुवर्णमुद्राएँ दी थीं तभी से उस वीर के गीत गाते हैं।

(2) जोगी : ये स्वयं को गुरु गोरखनाथ की शिष्य परंपरा में बतलाते हैं। इन्हें 'नाथजी' भी कहा जाता है। ये सारंगी रखते हैं तथा 'गोपीचंद-भर्तृहरि' 'निहालदे सुलतान' आदि गाते हैं।

(3) लंघा : ये जोधपुर के निवासी हैं, गायकी इनकी परंपरागत संपत्ति है। अधिकतर ये प्रेमगाथाएँ गाते हैं।

1-2. हिन्दी प्रदेश के लोकगीत

(5) पौराणिक गाथाएँ:

राजस्थान में पुराणों और महाभारत की कथाओं से संबंधित लोकगाथाएँ भी गाई जाती हैं। ये लोकगाथाएँ पुराणों से भी प्राचीन हैं और पुराणों में इन्हें संस्कृत से ग्रहण किया गया है। लोक जिन आदर्शों की कामना करता है उनकी झलक इन लोकगाथाओं में मिलती है। उदाहरण के लिए 'अहमदो' (अभिमन्यु) की गाथा ली जा सकती है। इस वर्ग के अंतर्गत अन्य लोकगाथाएँ ली जा सकती हैं - (क) ब्यावलो (ख) आंबारस प्रसंग (ग) भीमो भारत (घ) सैंत गैंडो (ङ) द्रुपदा अवतार (च) अहमदो।

(5) राजस्थानी लोकोक्ति साहित्य[1]

अनेक विद्वानों ने लोकोक्ति और कहावत के अर्थ को भिन्नता की ओर देखे बिना ही कहावत को लोकोक्ति के रूप में स्वीकृत कर लिया परंतु वास्तव में यह सही नहीं है। लोकोक्ति अपेक्षाकृत विशदार्थक शब्द है। इसके व्यापक क्षेत्र में कहावत, पहेलियां, सुभाषितें, लौकिक न्याय, ऐतिहासिक प्रवाद, मुहावरे और लोक की विशिष्ट उक्तियाँ आदि सभी सम्मिलित कर गिने जा सकते हैं। सारतः कहा जा सकता है कि समग्र लोक में प्रचलित उक्तियाँ, जो लोक को सहर्ष स्वीकार्य हों, लोकोक्तियाँ ही हैं।

अतः यहाँ हम राजस्थानी कहावतें और राजस्थानी पहेलियों का अध्ययन करेंगे।

(1) राजस्थानी कहावतें :

ग्रामवासियों की भाषा में शब्दों का परिष्कृत उच्चारण नहीं होता पर अभिव्यक्ति की सहजता एवं वाणी, कौशल का सम्यक विलास उसमें निश्चय ही देखा जा सकता है। उनकी भाषा में जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र से उत्पन्न उक्तियाँ राशि होती हैं। इनमें से कुछ परंपरा से प्राप्त होती हैं और कुछ वे स्वयं गढ़ते हैं। बहुत-सी कहावतें तो आज भी ऐसी हैं जिन्हें अभिजात्य वर्ग ने सुना ही न होगा। कहावतों में अनुभव-गांभीर्य का निचोड़ है। इनमें मानवीय बुद्धि और अनुभवों का मणिकांचन योग हुआ है। इन्हें संसार के नीतिसाहित्य (Wisdom Literature) का प्रमुख अंग माना जाता है। कहावतों का जीवन में स्थायी स्थान है। ये जन-जीवन की संपत्ति है। इनमें ज्ञान, नीति और मनोरंजन तीनों चीजें विद्यामान रहती हैं।

राजस्थानी भाषा में कहावत के लिए 'कैवत', 'केहावत', 'कुहावट', 'कुवावट', 'कुहावत' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी ग्राम कहावतों का एकत्रीकरण एवं अध्ययन डॉ. कनैयालाल सहल ने किया है। कहावतों के अध्ययन का यह महत्वपूर्ण प्रयास है। डॉ. सहल ने राजस्थानी लोकोक्तियों का वर्गीकरण[2] इस प्रकार किया है

* (1) ऐतिहासिक कहावतें
* (2) स्थान संबंधी कहावतें

1-2. राजस्थानी कहावतों का अध्ययन : डॉ. सहल, पृ. 58-59

✻ (3) राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र
 (क) जाति संबंधी कहावतें
 (ख) नारी संबंधी कहावतें
✻ (4) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य संबंधी कहावतें
 (क) शिक्षा संबंधी
 (ख) मनोवैज्ञानिक
 (ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें
✻ (5) धर्म और जीवन दर्शन
 (क) धर्म और ईश्वर विषयक कहावतें
 (ख) शकुन विषयक कहावतें
 (ग) लोक विश्वास संबंधी कहावतें
 (घ) जीवन दर्शन संबंधी कहावतें
✻ (6) कृषि संबंधी कहावतें
✻ (7) वर्षा संबंधी कहावतें
✻ (8) प्रकीर्ण कहावतें

उपर्युक्त वर्गीकरण में वर्ण्य विषय को आधार बनाया गया है। राजस्थानी कहावतों का समाहार इनमें हो जाता है। कुछ प्रसिद्ध कहावतें निम्नलिखित हैं।

(1) ऐतिहासिक :

(i) 'गांव गांव गोगो नै गांव गांव खेजड़ी'।

(ii) 'कठै राजा भोज कठै गांगलो तेली'।

(iii) 'बैरोचन कै कंस अर हिरणाकुस कै प्रहलाद'।

ऐतिहासिक घटना एवं चरित्रों को मुखरित करने वाला एक कहावती दोहा दृष्टव्य है-
'भीमा थूं भाटौ मोटे मगरे मांयलो ।
कर राखूं काठो, शंकर ज्यूं सेवा करूं ॥'[1]

(2) स्थान संबंधी:

(i) उदियापुर री कामणी गोरवां काढ़ै गात।
मन तो देवांरा डिगै मिनखां कितीक बात॥

(ii) देख्यो हाड़ा थारो देस रांड सुहागण एक ही भेस ।

1. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 333

(3) जाति संबंधी कहावतें :[1]

(i) 'राजपूत री जात जमी'।

'रजपूती धौरां में रळगी ऊपर रळगी रेत।'

राजपूत - 'ठाकर ग्या ठग रिया, रिया मुलक रा चोर।'

'रंघड़ कदैयन छोड़िये, जद तद करै बिगाड़।'

'रंधड़ रीझै गीतां सूं।'

(ii) 'अणमणिया भील मन जांणिया पलांणे'

भील - 'भील रे कांई ढील।'

(4) नारी संबंधी –

(i) 'बेटी पायी रे जगन्नाथ, ज्यां रो हैठै आयो हाथ।'

(ii) 'बेटी अर बलद जूड़ो कोनी गैर्यो।'

(iii) 'गाय अर कन्या नै जिन्नै हांकदे उन्नै ही चाल पड़ै।'

(5) त्यौहार

(i) 'गणगोरां नै ही घोड़ा न दौड़े तो कद दौड़े।'

(6) विवाह

(i) 'तिरिया तेरा मरद अठारा।'

(7) मनोवैज्ञानिक

(i) 'बकरी दूध तो दे पण दे मींगणी करकैं।'

(ii) चणा चाब कर कहै म्हे चावल खाया।

नहीं छांण पर फूंस म्हे हेली सै आया॥

(8) ईश्वर विषयक[2]

(i) 'अन्दर (इन्द्र) हरकी (सरीखा) गैरो अर धरती हरकी मारी नीं।'

(ii) 'आंधे रौ तंदूरौ बाबौ रामदेव बजासी'।

(9) शकुन विषयक[3]

(i) ... आटौ कांटौ घी घड़ौ, खुल्ला केसां नार

डावो भलो न जींवणौ।

(ii) 'छींकत खाये छींकत पीयै, छींकत रहिये सौय।

छींकत पर धर कदैय न जाये, तांठी बाजी होय॥'

(10) लोकविश्वास संबंधी

(i) 'बीघै बीघै भूत अर बिस्वै बिस्वै सांप।'

(ii) 'माथो मोटो सिरदार को अर पग मोटो गँवार को।'

---

1. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 331
2. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 332
3. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 339

(iii) 'छाती पर केस नहीं जकै सूँ बात नहीं करणी।'

(11) जीवन दर्शन संबंधी

(i) 'जलम घड़ी र मरण घड़ी टाली को नी टलै।'

(ii) 'करमहीण खेती करै, कै काल पड़ै कै बलद मरै।'

(iii) 'ओ भव मीठो, पर भव किण दीठो।'

(12) कृषि संबंधी[1]

(i) 'खेती पाती वीनती, मौरां तणी खुजाळ।
जै सुख चावै जीव रौ, तो हाथौहाथ संभाळ।''

(13) वर्षा संबंधी[2]

(i) 'आगम सूजै सांढ़णी, दौड़े थळां अपार।
पग पटकै.. जद मेह आवणहार॥'
'कीड़ी मुख में अंड ले, दर तज भूमि भमंत।
बिरखा रितू बिसेस यौ, जळ थळ ठेल भरंत॥'

अंक के अतिरिक्त कहावतें 'राजस्थानी कहावतों के कोष' की बानगी है।

(2) राजस्थानी पहेलियाँ:

'पहेली' शब्द संस्कृत शब्द 'प्रहेलिका' का विकसित रूप है। इसे 'दुर्विज्ञानार्थ प्रश्न' और 'कूटार्थ भाषा कथा' जैसी संज्ञाओं से भी अभिहित किया गया है। राजस्थानी में पहेली के लिए 'आड़ी', फाली, प्याली, हीयाली आदि अनेक शब्द मिलते हैं। पहेली पूछने के भाव का बोध कराने के लिए यहाँ आड़ी पूछणी, आड़ी घालणी, आड़ी सोलणी आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रदेश में रात को जब दो बच्चे दो दल बनाकर परस्पर पहेलियाँ पूछते हैं तब प्रारंभ करने वाले दल का बालक यह पंक्ति बोलता है, यहीं से प्रतियोगिता का प्रारंभ माना जाता है-

'आड़ी घालूं पाड़ी घालूं पेट में कटारी घालूं'।

उक्त पद्यांश में 'पेट में कटारी घालूं' में पहेली की दुरुहता को व्यंजित किया गया है।

मुख्य रूप से राजस्थान में दो चरणों में समाप्त होनेवाली तुकान्त और अतुकान्त पहेलियां मिलती हैं। दोनों के उदाहरण दृष्टव्य हैं-

(1) तुकान्त-

नर रे आंखज औक है, नारी री आंखज अैक।
नैण तो नारी रौ भलो, (पण) नर रो नैण बिसेक॥'

(सूर्य-चंद्र, रात-दिन)

---

1. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 341
2. राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन - डॉ. सोहनदान चारण, पृ. 342

(2) अतुकान्त–

'धरा बिन तरु ऊग्यो अैक, अैक घड़ी में बध्यो बिसेक।
हजार संख्या आंसू जास, तीन पहर में जिणरो नास।'

(सूर्य)

(1) 'अंवारे घर में लोही री टपकी' (गुंजा) (तुकान्त)
(2) 'हरंग जितरी हेलड़ी, कीड़ी जितरी छांह, बताओ कांई हुई?' (वर्षा की बूँद)

कुछ ऐसी भी पहेलियाँ मिलती हैं जो छंदब्ध हैं। ये छन्द पूर्णरूपेण शास्त्रीय छंद हैं। ऐसी पहेलियाँ दोहा, कवित्त, सवैया और छप्पय छंद में ही मिलती हैं।

पहेलियों के योग में राजस्थानी पहेली साहित्य को समृद्ध करने वाले कवि हैं - सोढ़ीनाथी, प्रेमदास, जोधपुर के राजा मानसिंह, किसना आढ़ा, बाँकीदास, बछराज, भोपाल भाट, सेमचंद, देयाळ कवि सागर, उदयराज आदि। राजस्थानी पहेलियों में रंग, गुण, आकृति और स्वाद-साम्य रखनेवाले प्रतीकों का अधिक प्रयोग किया जाता है।

राजस्थान प्रदेश में रात को बच्चे एक जगह इकट्ठे होकर दो दल बनाकर आपसमें पहेलियाँ पूछते हैं। जंवाई के आने पर आस-पड़ौस की स्त्रियाँ एकत्रित हो रात्रि के समय जंवाई से पहेलियाँ पूछा करती हैं। गाँव के युवा और वृद्ध भी रात में चौपाल आदि में इकट्ठे होते हैं तब पहेलियाँ पूछी जाती हैं। स्त्रियों दो चरणों वाली पहेलियों को ही लोकगीत के कलेवर में ढाल देती हैं। विविध उत्सवों पर स्त्रियों द्वारा पहेलियाँ पूछी जाती हैं। सांवण की तीज के झूले पर बैठते समय भी पहेलियाँ पूछी जाती हैं।

गूढ़ार्थक और द्वष्टिकूट पदोंवाली पहेलियाँ भी हमें राजस्थान में मिलती हैं।

राजस्थानी पहेलियों का वर्गीकरण :

(1) मनुष्य और उसके जीवन से संबंधित पहेलियाँ
(2) प्रकृति से संबंधित पहेलियाँ
(3) व्यवसायों से संबंधित पहेलियाँ
(4) शास्त्रास्त्रों से संबंधित पहेलियाँ
(5) पौराणिक चरित्रों एवं देवी-देवताओं से संबंधित पहेलियाँ

(1) मनुष्य एवं उसके जीवन से संबंधितः

नीचे प्रस्तुत की जाने वाली पहेली में शरीर के एकाधिक अवयवों का चित्रण पाया जाता है। इसमें यह वर्णित है कि राह चलते दो व्यक्तियों ने दो आम देखे। जिनके द्वारा (नेत्रों के द्वारा) आम देखे गए थे उनके द्वारा उठाए नहीं गए। जिनके द्वारा (हाथों के द्वारा) उठाए गए थे उनके द्वारा चखे नहीं गए। जिसने (जीभ ने) उन्हें चखा उसने खाया नहीं, ये आम तो और किसी के द्वारा (दांतों) ही खा गए।

उदाहरण :

मारग मारग जावतां पड़्या दोय आंबा देख्या दोय जिणा।
देख्या ज्यां लीना नहीं, लीना दोय और जिणा।
लीयां त्यां चाख्या नहीं, खाया कोई और जिणा॥
(नेत्र, हाथ, जीभ और दाँत)

(2) प्रकृति से संबंधित

प्रकृति की सुंदरता एवं विद्रुपता प्रमुख रूप से ऋतुओं पर निर्भर करती है। राजस्थान में वर्षा ऋतु को सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है। मेघ के गरजने, चपला के चमकने एवं वर्षा की झड़ी लगने के संबंध में काफी पहेलियाँ मिलती हैं। इसी ऋतु में प्रकृति भी नूतन शृंगार करती है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(i) बिन पांख्या जळ में बसे, उडे गगन में अेम।
सब देखत जांणत नहीं, सांच कहत कवि खेम॥ (बिजली)

(ii) अठ पखवाड़ां धरती फेरे, नीर पसीनो साथे गेरे ।
भरे परायो पेट अपार, खाली पेट करे निजनार॥ (मेघ)

(3) व्यवसायों से संबंधित – जैसे कृषि से संबंधित

(i) वाहण जाको बळद है, रुंडमाळ गळ मांय।
जटा बीच गंगा बहै, महादेव पण नांय। (रँहट)

(ii) च्यार आंगळ री लाकड़ी, आठ आंगळ रो पूठो।
इण आड़ी रौ अरथ बतावौ (नी) नाक कटायने ऊठो ॥ (गंडासा)

(4) शास्त्रास्त्रों से संबंधित

शस्त्रास्त्रों से रक्षा करने वाली ढाल के बारे में अनेक पहेलियाँ मिलती हैं:

(i) काळी है कबड़ाळी है, काळे बिल में रहती है।
लाल पांणी पीती है, मरदां रे कांधे चढ़ती है ॥ (तलवार)

(ii) स्यांम बरण वा सोहणी, फूलां छाई पीठ।
सब पुरखां रे गले पड़े ऐड़ी लंगर ढीठ॥ (ढाल)

(5) पौराणिक चरित्रों एवं देवी–देवताओं से संबंधित – कुछ पहेलियाँ दी जा रही हैं।

(i) बिना फूंक बजावै बाजा, बिना राज रै बाजै राजा।
बतावौ रै माइड़ां, औ कुण है राजा? (इन्द्र राजा)

(ii) अेक जिणौ जैड़ो तपियो, दूजौ तपियौ नीं कोई।
अेक जिणौ जैड़ो कूदियो, दूजौ कूदियौ नीं कोई।
अेक जिणौ जैड़ो बैठियो, दूजौ बैठियौ नीं कोई।
अेक जिणौ जैरौं लायों, दूजौ लायौं नीं कोई।
(क्रमशः ध्रुव, हनुमान, गणेश, भागीरथ)

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि राजस्थानी प्रहेलिका साहित्य बहुत ही समृद्ध एवं सौष्ठवपूर्ण है।

गुजरात की संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ:

गुजरात के अंदर और बाहर रहनेवालों को एक बात स्पष्ट रूप से जान लेने की जरुरत है कि गुजरात की भारत से पृथक् हो ऐसी कोई न संस्कृति है, न इतिहास और न ही भूगोल। गुजरात भारत का अनादिकाल से अभिन्न हिस्सा है। संस्कृति और सभ्यता ये राज्यशासन के व्यवहार में से नहीं वरन् लोकव्यवहार में से, मानव सद्‌विचार, सद्व्यवहार में से उत्पन्न एक समूची प्रक्रिया है। संस्कृति देशाभिमान, धर्माभिमान, कुलाभिमान, सत्य का आग्रह, निष्ठा, सौंदर्य की ताकत जैसे अनेक मानवीय सद्‌गुणों के संकुल से जन्म लेती है, पनपती है और मानव व्यवहार में कायम रहती है।

गुजरात एक ऐसा प्रदेश है जहाँ इतिहास, पुराण, कहानियाँ और दंतकथाएँ यह सब काल के उबलते खजाने में पिघलकर गुजरात के इतिहास का एक हल्का परंतु रोमांचक रंगमंच उपस्थित करते हैं। जिस रंगमंच पर श्रीकृष्ण से लेकर स्वामी दयानंद श्यामजी कृष्ण वर्मा, महात्मा गाँधीजी जैसे अनेक महापुरुषों का आना-जाना रहा है। सिद्धराज जयसिंह जैसे अनेक महापराक्रमी, प्रतापी राजाओं और राजघरानों के उतार-चढ़ाव देखे गए हैं औ अनेक देशी-विदेशी आक्रमणकारियों से गुजरात की धरा को तहस-नहस होते देखा गया है। परंतु इन सभी के बीच साबूत रही गुजरात की संस्कृति के शास्वत मूल्यों के प्रति लोगों की अडिग श्रद्धा और अटूट विश्वास।[1]

गुजरात की धरती को प्रकृति ने भरपूर सौंदर्य प्रदान किया है। पूर्व दिशा में विंध्य तथा सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियां, पश्चिम में कच्छ का रेगिस्तान, उत्तर में गिरिराज आबू पर्वत और दक्षिण में दमणगंगा के नैसर्गिक सौंदर्य से भरे गुजरात के गौरवशाली लोकजीवन के विस्तारपट पर नज़र दौड़ाएंगे तो समृद्ध कला, संस्कार एवं संस्कृति की मूल्यवान विरासत दिखाई पड़ेगी।

गुजरात की लोक संस्कृति के उद्‌गम के बारे में हम यह कह सकते हैं कि साबरमती के तीर पर झोंपड़ी बनाकर रहनेवाले आदिमानव के हाथों सर्वप्रथम इसका श्रीगणेश हुआ होगा। जबकि सौराष्ट्र की लोकसंस्कृति का पदार्पण 'वाड़ों' में रहकर पशुपालन करनेवाली अरण्यवासी जातियों द्वारा हुआ होगा। डॉ. हसमुख सांकलिया का मानना है कि साबरमती घाटी का संशोधन, इस बात को समर्थन देता है कि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की नगर संस्कृतियों का विकास हुआ, उससे पहले भी विचरती जातियों की लोक संस्कृति अस्तित्व में तो थी ही। इसके स्पष्ट अवशेष आज भी गुजरात के आदिवासियों के औजारों, देव-देवियों, भूत-भुवा, जंतर-मंतर तथा पशु-प्राणियों एवं वृक्षपूजा से प्राप्त होते हैं।

गुजरात की भूमि प्राचीन संस्कृति की भव्य विरासत संपन्न मानव निवास की धरती है। इस धरती पर से लोकजीवन के प्राचीन अवशेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। गुजरात में हुए पुरातत्वीय उत्खननों द्वारा लोथल तथा कच्छ में धोलावीरा से मिले अवशेष साढ़े पांच हजार वर्ष पहले के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं और साथ ही साथ सैंकड़ों वर्ष पूर्व विकसित हुई मानव संस्कृति के सुंदर दर्शन कराते हैं।

---

1. गुजरातना सांस्कृतिक प्रवाहो - हरकांत शुक्ल, पृ. 89 (अनुवादित)

गुजरात में गोप संस्कृति का उदय[1]:

गुजरात की विशाल धरती से लगा हुआ इसका 1600 कि.मी. लंबा सागर तट है। प्राचीन काल से मानव बस्ती के कारण सागर संस्कृति के उदय को यहाँ देखा जा सकता है।

आज से लगभग आठ हजार वर्ष पूर्व देव-देवियों की उपासना करने वाली तथा मच्छीमार के रूप में जीवनयापन करने वाली निषाद (भील) जाति के लोगों ने गुजरात की धरती पर पदार्पण किया था। कोली, खारवा, वाधेर और मियाणा इस जाति के वंशज माने जाते हैं। ई.स. पूर्व पांचवे शतक में आयोनियन, बेक तथा योन ग्रीक जातियाँ आईं और लकड़ी के देव-देवियों की मूर्तियों की पूजा गुजरात में लाईं। बरड़ा के मेर (हूण जाति) लोगों में आज भी इन ग्रीक लोगों के अवशेष मिलते हैं। लगभग चार हजार वर्ष पहले गुजरात की धरती पर भ्रमणशील जातियों में से गोप संस्कृति का उदय हुआ। मथुरा-वृंदावन से आए यादव और आहीर, अपने साथ वहाँ की रासलीला लाए। शोणितपुर के राजा बाणासुर की पुत्री उषा (ओखा) का विवाह श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ हुआ। कहा जाता है कि उषा ने पार्वतीजी के पास से सीखा हुआ लास्य-नृत्य द्वारिका की गोपियों को सिखाया। यहाँ से सारे सौराष्ट्र में इसका प्रचार हुआ। इस प्रकार गोप संस्कृति ने गुजरात को अनोखे उत्सव प्रदान किए। मानव हृदय को आनंद विभोर करनेवाले मेलों की परंपरा दी एवं आदर-सत्कार, आतिथ्य-औदार्य के उत्तम संस्कार प्रदान किए।

लोकजातियों का संगम गुजरात :[2]

सौराष्ट्र की भूमि प्राचीन काल से उपजाऊ होने के कारण जल और थल मार्ग से असंख्य लोकजातियाँ बाहर से आकर यहाँ बस गईं, ऐसा नृवंशशास्त्रियों का मानना है। उत्तर दिशा से आर्य, राजपूत तथा गुर्जर आए। दक्षिण दिशा में से कणबी आए, समुद्र मार्ग से सीदी तथा अरब आये। कच्छ का रेगिस्तान पार कर बलूच, भाटिया व लोहाणा आये। इसके अलावा समय के साथ काठियावाड़ की रमणीय भूमि पर मेमण, ओड, अतीत, सतवारा, सराणिया, सलाट, महिया, ढाडी, चामटा, बाबर, लंघा, खरक, वणजारा, रावण, तरगाळा, थोरी, खोजा, कुंभार, संधार, सुमरा, सरवण, भंगी, भोपा, भोई, लुहारिया, मोची इत्यादि लगभग एक सौ सत्तर से अधिक जातियाँ आकर बस गईं।

गुजरात में प्राचीन काल से आकर बस जानेवाली सभी जातियों के साथ उनके परंपरागत पहनावे, उनके इष्ट देव-देवियां, कला संगीत, साहित्य, नृत्य, लोकरिवाज, मान्यताएँ, नीति-रीत के खयाल, रहन-सहन तथा खान-पान के तौर-तरीके भी आए। स्थानिक तथा बाहर से आनेवाली जातियों के सहनिवास एवं भिन्न संस्कृतियों के आदान-प्रदान द्वारा समृद्ध बनी गुजरात की लोक संस्कृति के प्रवाह का झरना लोकजातियों के सम्मिश्रण से गुजरात की लोक संस्कृति के विशिष्ट स्वरूपों का सर्जन हुआ है। इन स्वरूपों द्वारा ही लोक संस्कृति का गठन हुआ है।

1-2. मध्यकालीन गुजरात का हिन्दी काव्य : भगवतशरण अग्रवाल

गुजरात में मुगल सल्तनत के अंत पश्चात मराठी शासन आने से राजनैतिक परिस्थितियों में बहुत फर्क नहीं पड़ा। परंतु मराठी शासन के साथ महाराष्ट्र की संस्कारिता का जो प्रवाह गुजरात में आया वह लाभदायक सिद्ध हुआ। अभी तक गुजरात का सांस्कृतिक संबंध सिंध, मालवा व राजस्थान के साथ ज्यादा था परंतु पेश्वा शासन के साथ महाराष्ट्र से सांस्कृतिक संबंध जुड़ा। आज गुजरात-महाराष्ट्र के संस्कारों का संगमस्थान बड़ौदा (वडोदरा) बन गया है। गुजरातियों में स्वाभिमानता कम है ये मान्यता ठीक नहीं है। देश-विदेश में बसकर अन्य समाज और संस्कृति के साथ समरस, एकरूप बनना गुजराती ज्यादा जानते हैं। गुजराती संकुचितता में विश्वास नहीं करते और बाहर की संकुचितता का भले ही अलग राज्य बना हो परंतु गुजरातियों की साहसवृत्ति का फलक तो समग्र संसार है। उनका मानसिक औदार्य व विशाल द्रष्टिकोण सभी से बढ़कर है। यह वही भूमि है जहाँ से दयानंद ने स्वधर्म और स्वराज्य का अलख जगाया, जहाँ से गाँधीजी ने ब्रिटीश सल्तनत समक्ष अहिंसक स्वराज्य आंदोलन चलाया, जहाँ से सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे लौह पुरुष ने भारत के नक्शे में से लालपीले रंगों को मिटाकर अखंड राष्ट्रभावना की नींव डाली और जहाँ से सरदारसिंह राणा ने क्रांति की ज्योति जगाई। गुजरात ने उसकी समस्त शक्तियाँ सर्वप्रथम भारत के चरणों में अर्पण की हैं। गुजराती प्रथम भारतीय है तत्पश्चात गुजराती है।

गुजरात की सांस्कृतिक विशेषताएँ:

गुजरात की सांस्कृतिक विशेषताओं को निम्न बिंदुओं के माध्यम से देखा जा सकता है:

(1) **धर्म और लोक मान्यता:** गुजरात प्रदेश की प्रजा के मुख्य धर्मों मे वैदिक, जैन, इस्लाम और ईसाई हैं। वेद धर्म-सनातन धर्म या देवी-देवता में श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मण धर्म में शैव, शाक्त और वैष्णव मुख्य शाखाएँ हैं। इसी में से विष्णु के ही अवतार माने जाने वाले श्रीराम की आराधना करने वाले रामानंदी, श्रीकृष्ण को अवतार माननेवाले वैष्णव पुष्टिमार्गीय, प्रणामी, स्वामिनारायण इत्यादि संप्रदाय और पंथ हैं। गुजरात में गिरनार पर्वत गोरखनाथजी की बैठक रूप में पवित्र और प्रेरक माना जाता है। अतः नाथ पंथी विविध धर्म पंथ है। साथ ही संतों की विशिष्ट परंपरा है। संत देवीदास, दादा मेकरण जैसे मानवसेवा धर्मी संतों की परंपरा है। गुजरात में जातिगत और कुटुंबगत धर्म भी होते हैं। जिसमें किसी सती-सूरधन के पूजन अर्चन होते हैं। प्रत्येक गुजराती कुटुंब में अपनी कुलदेवी होती है और गणेश तथा लक्ष्मी मांगलिक शुभ प्रसंगों के विघ्नहर्ता और श्रीसमृद्धि, सुख प्रदान करनेवाली देवी के रूप में पूजे जाते हैं। सरस्वती विद्या देवी के रूप में आराध्य है।

गुजरात में ज्यादातर राजकीय शासक शैव थे अतः शैव और शाक्त धर्म की मुख्य धारा बहती रही। शैवधर्मी शासकों ने जैन धर्म को पोषण (सहारा) दिया और इस पंथ में वस्तुपाल और तेजपाल जैसे दानवीर हुए, कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य जैसे गुजरात के उत्तम विद्यापुरुष हुए। मुस्लिम शासकों की अराजकता के समय दौरान जैन श्रेष्ठियों ने अपने धर्मस्थानों, ज्ञान भंडारों को अपनी सूझबूझ, शक्ति और व्यवस्था से बचाए रखा, सुरक्षित रखा। इन्हीं कारणों से जैन धर्म प्रभावक रहा। गुजरातियों के आचार-विचार पर अहिंसा, जीवदया और कर्म के सिद्धांत का मुख्य असर रहा। साथ ही बौद्ध धर्म का प्रचलन सम्राट अशोक के समय में रहा। जिसमें बौद्ध भिक्षुओं के विहार बने, पहाड़ पर गुफाओं में शैलगृह और स्तूप निर्मित हुए। पर यह धर्म

ज्यादा टिक न पाया। आठवीं शताब्दी के अंत और नौंवी के प्रारंभ में सनातन धर्म के समर्थ सुधारक और तत्वज्ञ शंकराचार्य ने गुजरात के द्वारिका में शारदामठ की स्थापना की।

गुप्तकाल में विष्णुपंथ के धर्मों का प्रवर्तन था। सूर्यपूजा का प्रचलन था। सौराष्ट्र के थान प्रदेश में प्राचीन सूर्यमंदिर है। गुजराती मैत्रक उपासना सूर्य की ही है। सूर्यपूजा का बड़ा केन्द्र श्रीमाल है जहाँ शाकलद्वीपीय ब्राह्मण बसते हैं।

गुजरात में इस्लाम धर्म का प्रवेश हुआ ई. 571 में जन्मे मोहम्मद पैगंबर साहब से अरबस्तान में इस धर्म का प्रारंभ हुआ। गुजरात के बंदरगाहों पर व्यापार के लिए आरब देशों के जहाज़ आते थे। उनमें से कुछएक गुजरात में बस गए। ई. 760 बाद ढाढर नदी के मुख के पास गंधार बंदर में मस्जिद बनी। दक्षिण गुजरात में खंभात के पास इनकी बस्ती थी।

गुजरात में पारसियों के आगमन के साथ पारसी धर्म भी अस्तित्व में आया। जिन्होंने अग्निपूजा को महत्व दिया। पारसी धर्म में ज्ञानभक्ति, नीति, सदाचार और संवाद का सत्व है। पारसी की बस्ती में धार्मिक स्थल 'अगियारी' है।

गुजरात के इतिहास का सुवर्णकाल सोलंकी युग माना जाता है। इसमें धर्म का विकास हुआ। लकड़ी के बदले पत्थरों के भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। विष्णु के मंदिर बने। सूर्यपत्नी 'रन्नादे' का पूजन अर्चन प्रारंभ हुआ। वस्तुपाल ने खंभात के मंदिर में 'रन्नादे' (पुत्र देने वाली देवी) की प्रतिष्ठा की। लोकजीवन में तो विशेष आराध्य 'गोदी का खेलनहार' (खोळा नो खूंदनार) देनेवाली रन्नादे रहे।

इसके अतिरिक्त ईमामशाह (ई. 1452-1513) ने 'पीराणापंथ' की स्थापना की जो मुख्यतया उत्तर गुजरात और मध्य गुजरात के पेटलाद प्रदेश में प्रचलित हुआ।

गुजरात के धर्मों में मुख्य प्रभावक और सामाजिक स्वास्थ्य के उत्कर्ष में विशेष योगदान देने वाले आर्य समाज और स्वामिनारायण संप्रदाय हैं। इनके प्रवर्तक सहजानंद स्वामी थे, जिनके स्वामिनारायण पंथ का प्रभाव गुजरात में विशेष रहा और है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदू धर्म की मूर्तिपूजा का विरोध किया। परंतु सहजानंदजी का विशेष प्रभाव रहा। उन्होंने गुजरात के वडताल और अहमदाबाद में मंदिरों की स्थापना की। उनके उपदेशों का संग्रह किया गया। उन्होंने गुजरात की शूरवीर प्रजा को सत्संगी बनाकर सात्विक जीवन का बोध दिया। गुजरात के भक्त कवि 'नरसिंह मेहता' और मीरां तो आज भी गुजरात के गाँव-गाँव, कण-कण में लोककंठ में हैं। गुजराती कवि दयाराम ने भक्ति स्त्रोत काव्यरूप में बहाया। 'अखा' कवि भी प्रसिद्ध हैं। लोकसंतों ने भजन द्वारा ज्ञान, भक्ति, योग और मानवसेवा को वेगवान बनाया। राजस्थान के रामदेव पीर का पंथ भी गुजरात में अनेक लोगों ने अपनाया। सभी लोकसंतों (आपा दाना, उनड बापु, आपा गीगा, आपा जादरा) ने संतवाणी से भक्ति धर्म को जीवंत बनाया। 'मूळदास', 'शीलदास', 'हरजी भाटी' जैसे अनेक संतों की वाणी लोककंठ पर है।

धर्म के साथ-साथ अनेकों लोकमान्यताएँ भी प्रचलित थीं। लोकमान्यताओं की जड़ में अंधश्रद्धा और वहम है। और वहम का मूल कारण मानव की स्वयं की आंतरिक या बाह्य असमर्थता है। लोकमान्यता के

अंतर्गत प्रारब्ध, शगुन, अपशगुन, व्रत, नियम, अनुष्ठानों का जन्म हुआ और सभी का कर्ता-हर्ता ईश्वर माना गया। उसे प्रसन्न करने के लिए नामस्मरण, धून, भजन, पूजन-अर्चन इत्यादि से जिस पदार्थ को मंत्रों से सिद्ध किया जाता उसमें (पदार्थ) शुभ और मांगलिक शक्ति के निर्माण की शक्ति है ऐसी श्रद्धा बनी। दशामा (माता) का धागा लेकर, व्रत कर, गाँठें बांधी जातीं, धूपदीप से पूजन। मंत्र लिखकर पूजा पत्र रखा हो ऐसे ताबीज, हनुमान चालीसा, बोलकर मंत्रित ऊन का धागा (डोरा) इत्यादि प्रचलन में है।

वर-कन्या की कलाई पर बंधा मींढळ, मंडप में कोने में रखा माणेकस्तंभ, मंत्रित जल, चने, धागे में पिरोए नींबू मिर्च, घरद्वार पर लगी घोड़े की नाल (नाळ) आदि मंत्रित पदार्थ हैं परंतु सर्वोच्च शक्ति ईश्वर की मानी जाती है। सभी शुभ कार्यों में शुभ तिथि, वार, मास, नक्षत्र देखकर ही कार्य संपन्न होते हैं। लोक मान्यता के साथ संबद्ध देव-देवियों का भी अस्तित्व हुआ। ओरी अछबड़ा (चेचक) नूरबीबी, शीळी (शीतला मां का कोप) आदि रोग कहीं-कहीं पर अंधश्रद्धा भी देखी जाती है। जैसे कभी-कभी पिता किसी तांत्रिक के कहने पर स्वकुटुंब पर आपत्ति निवारण हेतु अपने ही संतान की बलि चढ़ा दे या भोग देता हो ऐसी घटना भी होती। कभी लोग किसी स्त्री को चुड़ैल मान उसे गाँववाले जिन्दा जलाए ऐसा कदाचित बनता है। ये सब यही प्रकट करता है कि अंधश्रद्धा की जड़ें कितनी गहरी हैं। इस प्रकार वहम, अंधश्रद्धा और टोने टोटके लोकमानस के अंग बने।

❋ **शगुन अपशगुन :** यह सब भी प्रचलित हैं। जैसे - किसी पशु या पक्षी का रास्ता काटना, किसी दिशा में बोलना, जैसे बंदर का एक तरीके से बोलना, हिरन का एक प्रकार से भौंकना, आकाश में पक्षियों का मंडराना ये सब प्रकृति के प्राणियों का मानव के लिए भय के संकेत है, चेतावनी है।

(ii) उत्सव, मेले, त्यौहार, व्रतः

उत्सव,पर्व, मेले, त्यौहार, व्रत सभी एक-दूसरे से परस्पर जूड़े हैं। दिवाली, बेसता वर्ष (नववर्ष गुजराती), भाईबीज (भैयादूज), देवदिवाली, मकरसंक्रांति, वसंतपंचमी, महाशिवरात्री, होली, धूलेटी (धूलेंडी), रामनवमी, हनुमान जयंती, अखात्रीज, भीम अगियारस, अषाढी बीज, श्रावणिया सोमवार, नागपांचम, शीतळा सातम, जन्माष्टमी, नवरात, दशेरा (दशहरा) और शरदपूनम गुजरात के धार्मिक पर्व के दिन हैं। साथ ही ये सभी उत्सवों से भी जुड़े हैं। दिवाली, होली और मकरसंक्रांति का स्वरूप सामाजिक उत्सव का है। दिवाली मतलब मिलन मुलाकात, दीप, पटाखे और मिठाईयों का उत्सव, वार्षिक हिसाब का, चितार का दिन। (व्यापारी से संबंधित)। मुस्लिम समाज का 'ईद' मुख्य त्यौहार, जैन धर्म दिवाली के साथ पर्युषण (पर्व) महावीर जयंती मनाते हैं। सिंधी प्रजा चेटीचंद और कच्छी 'अषाढी बीज' मनाते हैं। होली मौज-मजा और रंग का उत्सव है। इसके साथ प्रहलाद की कथा जुड़ी है। होली के दिन उपवास कर खजूर, धानी, चने इत्यादि दिन में खाते हैं। रात्रि को होली जलने के समय जल, धानी-चने आदि से परिक्रमा कर नारियल अर्पण करते हैं फिर 'कंसार' (गेहूँ व गुड़ मिलाकर बनता है) का भोजन करते हैं। मकरसंक्रांति धार्मिक द्रष्टि से दान-पुण्य की महिमा का दिन है, परंतु गुजरात की उत्सवरसिक प्रजा के लिए तो आकाश को रंगबिरंगी पतंगों से भर देने का दिन है। कई दिन पूर्व ही इसकी तैयारियाँ शुरु हो जाती है। इस दिन गुजरात के

हर गाँव, शहर में आकाश पतंगों से भर जाता है। छत पर 'काप्यो छे' के नारे लगाते हैं। तिलगुड़ की 'चिक्की' बनाकर खाते हैं।

फिर नवरात्रि का त्यौहार, (मा आद्यशक्ति की आराधना का पर्व) आता है। नौ रात तक यह गरबा चलता है। प्राचीन समय में मंडप लगाकर बीच में माता की मूर्ति स्थापित कर दीप जलाकर गरबे गाए जाते थे। समयानुसार उसमें परिवर्तन आते जा रहे हैं। नाताल (क्रिसमस) का त्यौहार भी केवल ईसाई लोग ही नहीं वरन् सामान्य जन भी मनाते हैं। बच्चे सांताक्लॉज़ पात्र को खूब पसंद करते हैं। जन्माष्टमी का त्यौहार गुजरात में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। 'नंद घेर आनंद भयो, जय कन्हैया लाल की, हाथी-घोड़ा-पालखी, जय कन्हैलाय लाल की' धून चारों ओर बज उठती है।

उत्सवों के साथ मेले भी अभिन्न रूप से जुड़े हैं जो उसी का एक अंग बन गए हैं। मेले केवल मनोरंजन के उद्देश्य से नहीं वरन् मेल-मिलाप, घरेलु चीजों की बिक्री में भी सहायक होते हैं। इन मेलों में बाज़ार लगते हैं जिनमें अनेकों चीज़ें बिकती हैं और दूरदराज से लोग खरीदने आते हैं। मनोरंजन हेतु अनेक साधन होते हैं। जादू के खेल, यात्रादर्शन, अंग कसरत, सट्टा, निशानेबाजी आदि होता है व इनाम दिए जाते हैं। 'लोक खेल, लोक कलाओं' को इन मेलों में स्थान मिलता है। बच्चों के लिए रंगीन छड़ी, फिरकी, दौड़ने वाला मगर, अनेकों खिलौने बिकते हैं। मिट्टी की मूर्तियाँ आदि।

इस प्रकार के मेलों को 'धार्मिक मेले', उत्सव मेले और पशु मेले तीन में विभाजित किया जाता है। गुजरात में मुख्य रूप से धार्मिक मेले श्रावण (सावन) के महीने में लगते हैं। श्रावण (सावन) महीना धार्मिक पर्व पवित्रता का महिना है। 'जलझीलणी अेकादशी', चैत्री पूनम, देवदिवाली, महाशिवरात्री के विशेष मेले लगते हैं। सौराष्ट्र के जूनागढ, राजकोट, भावनगर, सुरेन्द्रनगर जिलों मं गोकुल अष्टमी (जन्माष्टमी) का मेला लगता है। जूनागढ में शिवरात्री के तीनों दिन 'तरणेतर का मेला' बड़े पैमाने पर लगता है। जो गुजरात का एक प्रसिद्ध लोक मेला है। जिसमें रंगबिरंगी परंपरागत पोशाक में सोरठ के युवक-युवती रास की रंगत जमाते हैं। रुमाल और कढ़ाई की हुई छत्री इस मेले की विशेषता है।

कृषक समाज के लिए उपयोगी ऐसे पशुधन के लिए भी खास मेले लगते हैं। जिसके पशुओं को क्रय विक्रय होता है (इन मेलों) जिन्हें गुजराती में 'हटाणा बाजार' कहते हैं।

इस प्रकार उत्सव, पर्व और मेले गुजरात की लोकसंस्कृति का जीवंत रहनेवाला अंग है।

(iii) रीति रिवाज और परंपरा :

हर प्रजा का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व उस प्रजा को उसकी परंपरा में से मिलता है। गुजरात की प्रजा का भी ऐसा ही लाक्षणिक व्यक्तित्व है। ऐसी प्रजागत लाक्षणिकता और जीवन के प्रति उसका व्यक्तिपरक और सामाजिक दृष्टिकोण रीत रिवाज में प्रकट होता है। रीत रिवाज के अंतर्गत जन्म से लेकर मृत्यु तक के मुख्यतः सीमंत (गोद भराई), गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन (जन्म के बाल), विद्याग्रहण, विवाह इत्यादि सोलह संस्कार रखे गए हैं। धार्मिक विधियाँ भी होती हैं।

सीमंत (गोदभराई) रांदल (माता रन्नादे) के साथ जुड़ा है। 'छट्ठी' (जन्म का छठवां दिन) कागज कलम ईश्वर के पास रखा जाता है जिसमें विधाता से अच्छे लेख लिखने की प्रार्थना की जाती है। अतः कुमकुम चावल से कागज का पूजन होता है। नामकरण में बच्चे (शिशु) को वस्त्र का झूला बनाकर झुलाते हुए 'ओळी झोळी पीपळपान, फोईऐ पाड्युं नाम' (अर्थात् झुलाते हुए बुआ ने नामकरण किया)। ऐसे संस्कार धीरे-धीरे लुप्त होते गए परंतु विवाह संस्कार धूमधाम से किया जाता है। गुजराती लोक साहित्य के मर्मज्ञ श्री मेघाणीजी के शब्दों में 'लग्न जीवननुं महाकाव्य छे' (शादी विवाह जीवन का महाकाव्य है)। विवाह विधि कौटुंबिक जीवन के सम्मेलन-मिलन का अवसर है। अनेकों विधियाँ की जाती हैं। प्रत्येक विधि से जुड़े गीत रहते हैं। रीतिरिवाजों में समाज में व्यक्तिगत जीवन को कुटुंब एकरुपता में जोड़ रखने की व्यवस्था थी। ये रिवाज किसी एक जाति विशेष के लिए नहीं वरन् समग्र गुजरात के लोकजीवन के लिए आइना थे। अंत्येष्टि जीवन का आखिरी संस्कार है। जाति के अनुरुप इस संस्कार के रिवाज भिन्न हैं। गुजरात में हिंदू समाज में मरणोपरांत अग्निदाह दिया जाता है। बाद में १० दिनों तक 'सूतक' का पालन किया जाता है। सायंकाल दीप रखा जाता है। गरुडपुराण या गीता का पठन किया जाता है। भजन, धून, नामस्मरण होता है। बारहवें-तेरहवें दिन श्राद्ध किया जाता है। नर्मदा, प्रभासपाटण, हरद्वार, गंगाजी में अस्थिविसर्जन किया जाता है।

(iv) स्वभावगत विशेषताः

गुजरात की प्रजा में अनुकूलन क्षमता, व्यावहारिक दृष्टिकोण और शांत, स्वच्छ, अहिंसक स्वभाव है। कई गुजराती विदेश में जाकर बस गए जैसे दूध में शर्करा मिले उस तरह मिल गए। परायों को अपना बनाने की क्षमता सहज है। संघर्ष की अपेक्षा समन्वय पर बल देने वाली प्रजा है। अहिंसक वृत्ति होने पर भी गुजरात की प्रजा में शूरवीरता, जवांमर्दी, स्वाभिमान (खमीर, खुमारी) का अभाव नहीं है वरन् यह गुण कूट-कूट कर भरे हैं।

(v) वेशभूषाः

प्रजा की परंपरा उसकी वेशभूषा, खानपान, उत्सव आदि में प्रकट होती है। गुजरात में वेशभूषा का वैविध्य नजरों को आकर्षित करता है। गिरिजन, ग्रामजन और नगरजन ये तीनों प्रजावर्ग वेशभूषा के कारण अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं। नगरजनों के खान-पान और वस्त्राभूषण पर पश्चिम का असर दिखाई पड़ता है। परंतु गुजरातिता टिकी है। ग्रामवासी में मालधारी (श्रमिक), किसानों में वेशभूषा की परंपरागतता अभी भी वही है। कच्छ और सौराष्ट्र में रबारी, भरवाड़, कणबी (जाति) के लोगों की पोशाक में पुरुष केडियुं (ऊपरी भाग में पहनने का वस्त्र) पहनते हैं तथा नीचे चोरणी (नीचे पहनने का वस्त्र),जो ऊपर से खुली व नीचे तंग होती है, वह पहनते हैं। कढ़ाई की हुई बंडी (जैकेट) ऊपर पहनी जाती है। भरवाड़ स्त्रियाँ ऊन के ही वस्त्र पहनती हैं। हाथों में सफेद बलोया (मोटी चूड़ियाँ) जो कलाई से लेकर बाँह तक पहनी जाती हैं। चाँदी के कड़े, कानों में बालियाँ होती हैं (ऊपरी हिस्से में)। पुरुष सर पर पगड़ी बाँधते हैं। साफे (सर पर) बाँधे जाते थे जो अब लुप्त होते जा रहे हैं। आभूषणों में सोने-चाँदी व हाथीदाँत का प्रचलन है, उसमें वैविध्य है।

(vi) खान–पानः

खानपान में मुख्य रूप से बाजरे की रोटी (बाजरा ना रोटला), भरी हुई सब्जियाँ, कढ़ी, दहीं, छाछ इत्यादि। रात्रि भोजन (वाळु) में दूध व बाजरे की रोटी, शहरों में गेहूँ की रोटी, दाल, चावल, सब्जी और रात को 'भाखरी' (गेहूँ की कड़क रोटी) और खिचड़ी बनती है। यहाँ ही प्रसिद्ध वानगी 'ढोकळा' है। साथ ही भजिया, खमण, पातरा, खांडवी इत्यादि खाया जाता है। मिठाई में लड्डु, शीरा, दूध तथा मावे की अनेकों मिठाईयाँ खाई जाती हैं। गुजरात में सौराष्ट्र छोड़ उत्तर गुजरात की ओर जाएँ तो ईडर, साबरकांठे पर मकाई की रोटी और बाटी चूरमा मिलता है। लगता है मानों राजस्थानमें प्रविष्ट हुए हों।

(vii) मनोरंजन (लोकरंजन):[1]

इसमें लोकनाट्य, भवाई, रामलीला, ढाढलीला तथा मनोरंजन करने वाले मदारी, बहुरूपी, बजाणिया, भांड, भोपा, मल्ल और कठपुतली का खेल दिखानेवाले शामिल हैं। कठपुतली का खेल मारवाड़ी भाट लोग करते थे। मदारी बीन बजाकर साँप, 'नोळियो' (नेवला), रींछ (भालू) के खेल दिखाते हैं। रींछ संग कुश्ती कर, बीन ताल पर सर्प नचाना आदि।

नट, बजाणिया (नट प्रकार) लोग डोरी पर चलते हैं, वजनवाला मजबूत पत्थर छाती पर रखकर या पत्थर को डोरी बाँध दाँत से उठाने वाली अंग कसरत के खेल दिखाकर मनोरंजन करते हैं। यह खेल गाँववालों के लिए सर्कस समान खेल है। बाँस को आमने-सामने तिरछा रख दो घोड़ी (पाँव रखने का साधन) बनाकर बीच में रस्सी बाँध नट खेल शुरु करते। साथ ढोल भी बजते। छोटी-सी उम्र की बाला भी आश्चर्यचकित करने वाले खेल करती है। नटों में राज नट, मारवाड़ी नट और हरिजन नट तीन जातियाँ होती हैं। हनुमानजी इनके आराध्य देव हैं तभी तेज और अंग कौशल में माहिर हैं।

ऐसी समृद्ध गुजरात की लोक संस्कृति है। ऐसी लोक संस्कृति कोई कल्पना विहार नहीं है, वरन्. वास्तव भूमि पर जीवन का आविष्कार है। लोक समाज, मानस का सच्चा और समृद्धिवंत चित्र है। अणु-अणु सौंदर्यमंडित संस्कृति भावनाओं के उर्ध्वीकरण का कारण है। जीवन पुकारता और सौंदर्य प्रकट होता। अब लोक में जनजीवन में जो कुछ भी विशिष्ट संस्कार हैं वह विकृति न बने और उसका विनाश न हो यह देखना महत्वपूर्ण है। पं. जवाहरलालजी ने सौराष्ट्र के चोटीला के पास गाँव 'मनडासर' की कोळी (आदिवासी, निम्न) रासमंडळी को रास व समूहगीत को प्रथम इनाम देते हुए कहा था – ''लोक जीवन में जो विशिष्ट संस्कृति है उसका कृपया आधुनिकीकरण न करना। उसके वैविध्य, वैशिष्ठ्य और मूल स्वरूप में ही भारत माता का वास है।''

---

1. लोकसंस्कृति – वसंत निर्गुणे
   गुजरातनी लोकविद्या – हसु याज्ञिक

गुजरात का लोक साहित्य :

उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिम की असर तहद हमारे यहाँ जो विभिन्न विद्याशाखाएँ अस्तित्व में आईं, उनमें 'फोकलोर' - लोकविद्या भी एक है। लोकविद्या में आदिम अंशों का अभ्यास केन्द्र स्थान पर है, जिसमें आवास, वेशभूषा, आजीविका और सांस्कृतिक चीजों संबद्ध मामलों की उपशाखायें हैं। इनमें से सांस्कृतिक मामलों के अंतर्गत किसी साहित्य का अभ्यास जरुरी माना गया। इसी कारणवश जिस साहित्य की खोजबीन चली उसे 'लोकसाहित्य' नामाभिधान प्राप्त हुआ।[1]

इतिहास, पुराण और मानव समूहों के विधि-विधान तथा धर्मग्रंथ रचित नहीं हुए थे तब भी लोक था और अब आज भी है। लोक संस्कृति वह लोकजीवन रूपी बिलौने से निकला मक्खन है और लोक साहित्य उस लोक संस्कृति के विशाल वृक्ष की एक शाखा है।

सभ्यता के प्रभाव से मुक्त ऐसी सहज अवस्था में जीने वाले लोगों की आशा-निराशा, हर्ष-शोक, लाभ-हानि, सुख-दुःख और जन्म-मरण आदि जो साहित्य में व्यक्त हो जिसमें लोक का आदितत्व मूल रूप में विद्यमान हो उसे भी लोक साहित्य कहते हैं।

लोक साहित्य की विशद् व्याख्या करते हुए 'जयमल्ल परमार' लिखते हैं -

''लोक साहित्य अर्थात् जिसको किसी की कृति न कहा जा सके, जो श्रुति में हो और जिसका लोकमानस के स्वभाव (प्रकृति) में समावेश होता हो वह। जिसमें तमाम (सारी) बोलियाँ और ऐसी भाषाओं का समावेश होता है, जिसमें लोक का आदितत्व विद्यमान हो वह।'[2]

'किसी का कृतित्व हो परंतु जिसमें लोक मानस का सामान्य तत्व विद्यमान हो, और किसी के व्यक्तित्व से जुड़ा हुआ हो तब भी लोक जिसका स्वयं के व्यकितत्व रूप में स्वीकार करे और जिसमें से अव्यक्तित्व के व्यक्तित्व का विकास हो वह लोक साहित्य है।'[3]

इस प्रकार लोक साहित्य का क्षेत्र अत्यंत विशाल हो जाता है। लोक साहित्य के अभ्यास पर से विश्व का लगभग सर्वमान्य मत बँधा कि - 'लोगों द्वारा, लोगों के लिए, लोगों के बीच (मध्य) रहकर (of the people, by the people, for the people) जो रचा गया वह लोक साहित्य।'

लोगों का, लोगों द्वारा, लोगों के लिए जो साहित्य सृजित हो वह लोकभावना से ही प्रतिबिंबित होता है। अर्थात् लोक साहित्य लोकभाव, लोक विचार और लोक संवेदना का स्वरूप प्राप्त करता है। इसी कारण उसमें समग्र लोकजीवन का प्रतिबिंब दिखाई देता है। व्यक्तिप्रतिभा का जिसमें सर्वथा अभाव हो वही लोकसाहित्य बन सकता है। लोकसाहित्य की शैली चित्रात्मक होती है। लोकसाहित्य की रचनाओं में चूँकि जीवन प्रकृतिपरायण है अतः प्रकृति के महिमावान स्वरूपों का चित्रण आलेखन होता है। उसकी रचना का सौष्ठव लाधव, चोटपूर्ण, मर्मवेधक होता है। शास्त्रों, पुराणों और ऐतिहासिक घटनाओं को देखने या अवलोकित करने की उनकी जीवनदृष्टि निराली होती है। ये आडंबर, कृत्रिमता, दंभ को सह नहीं सकता चूँकि इसके लिए

1. गुजरातनुं लोकसाहित्य - नरोत्तम पलाण, पृ. 1
2-3. लोकसाहित्य विमर्श - जयमल्ल परमार, पृ. 20

लोगों का योगक्षेम महत्वपूर्ण है। इसकी भावनाएँ भी सामूहिक संवेदन अनुभव करती है। भावों की अभिव्यक्तियों में सीधा खिंचाव व सीधा साक्षात्कार विद्यमान रहता है। जीवन के व्यवहार और घटनाओं के तीर्व भावों में से उसका सर्जन होता है। उसी में से सामूहिक सार्वजनिक आनंद प्राप्त किया जाता है। साहित्य निजानंद हेतु है, अतः लोग ही नाचते, कूदते और गाते हैं, स्वयं ही पात्र की अदायगी कर स्वयं ही आनंदानूभूति करते हैं।

लोक साहित्य के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं -

(1) लोक साहित्य हमेशा बोलियों में ही रचा हुआ हो।

(2) उसमें मनुष्य के आदिम भाव संवेदन तथा वाणीवर्तन (व्यवहार) समाए हो अथवा दूसरे तरीके से कहें तो उसमें बीते हुए समाज का एवं वर्तमान लोकजातियों का लोकमानस प्रतिबिंबित होता हो और

(3) उसके सर्जन का कारण समग्र लोक हो।

लोक साहित्य की विस्तृत चर्चा के बाद गुजरात के लोक साहित्य का विस्तार देखें-

गुजरात का लोकसाहित्य अति समृद्ध है। विषय वैविध्य के मामले में शायद ही भारत की कोई अन्य भाषा गुजराती लोकसाहित्य के मुकाबले तुलना में आ सकती है। साहित्य का वैविध्य मुख्य दो बातों पर आधारित होता है बोली और बोलियों के प्रकार। पर साथ ही भौगोलिक विशिष्टता एवं जन-जीवन की जीवन शैली पर। प्रजा जीवन भी भिन्न-भिन्न परंपरा से निकला हुआ और एक ही भाषा तहद आने पर भी जीवन-व्यवहार में सर्वथा अलग-अलग मिजाज रखते हैं। इस कारण गुजरात के लोक साहित्य को अपार वैविध्य प्राप्त हुआ है। सिर्फ सौराष्ट्र की ओर देखें तो ओखामंडळ, बाराडी, बरडो, धेड, नाघेड, गीर, वाणाक, गोहिलवाड़, भाल, झालावाड़, हालार, पांचाळ आदि के एक-दूजे से स्पष्टतः भिन्न पड़नेवाले वाणी व्यवहारयुक्त उप-प्रदेश व उनकी अलग-अलग लोक संस्कृतियाँ हैं। इन उप-प्रदेशों में जातिगत विशिष्ट लोकसाहित्य है। जैसे काठी-काठियाणी, कणबी-कणबण, आहिर-आहिराणी, मेर-मेराणि, गोर-गोराणी, रबारी-रबारण, चारण-चारणियाणी जैसी बड़ी कोम के अलावा हाटी, मैया, मियाणा, पढार, कारडिया, वाघेर, वाघरी, मेघवार, हरिजन, भंगी और सीदी जैसे छोटे लोक भी हैं। हर-एक के अपने प्रश्न हैं, विशिष्ट संवेदन हैं और उसी से संबंधित उत्पन्न हुआ विभिन्न लोक साहित्य है। सामान्यतया ये लोकवर्ग एक स्थल पर रहते एवं गृहस्थ हैं। इसके उपरांत घूमने वाले लोक (जो एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होते हैं) जिसमें मुख्य रूप से 'ओधड', गोदड, रुखड, सुखड, कुकड, खाखी, नागा, नाथ जैसे साधुओं का अपने धर्मरंग में रंगा लोक साहित्य है।

पोरबंदर के पास भेनकवड़ पूरा मीर लोगों का - शहनाईवादकों का - गाँव है, गीर का जंबूर सीदी लोगों का गांव है। इस हर गाँव की अपनी लोकोक्ति, हास-विनोद और गीतकथाएँ हैं। इसी प्रकार - ओखामंडळ और उसी के गाँवों की विशिष्टता कच्छ, उत्तर गुजरात और दक्षिण गुजरात - उसकी आदिवासी जातियाँ, समुद्र किनारे के सागर खेवैये, पहाड़ों पर बसने वाली प्रजा (जनता) और बेट (टापू) में रहनेवाली जातियाँ - हरेक का अपना लोक साहित्य है। निःसंदेह गुजरात के पास विविध प्रजा समूह और उनके लोक साहित्य का अपार खजाना है।[1]

---

1. गुजरातनुं लोकसाहित्य - नरोत्तम पलाण, पृ. 3-4

गुजराती लोक साहित्य का वर्गीकरण:

इस प्रकार लोक साहित्य अति प्राचीन स्त्रोत है। समयानुसार उसमें स्वरूप विकास भी हुआ है। लोकसाहित्य किसी एक विषय का नाम नहीं परंतु इसमें लोकगीत, कथागीत, लोकनृत्य, लोक कथाएँ, लोकगाथाएँ, लोकनाटक एवं लोकोक्ति (कहावत, पहेलियाँ, मुहावरे) का व्यापक रूप से समावेश होता है। इसे लोकसाहित्य कहा जाता है। यह सब लोकसाहित्य का अंश है। प्रत्येक अंश अपने अंतर्गत विशाल व्यापक क्षेत्र को आवृत्त कर लेते हैं। अतः गुजराती लोक साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार करेंगे।

(1) लोकगीत (2) कथा गीत (3) लोक नृत्य
(4) लोक कथाएँ (5) लोक नाट्य (6) लोकोक्ति

(1) लोकगीत :

लोकगीत प्रत्येक प्रांत की अपनी निजी धरोहर है, संपत्ति है। लोकगीत के अर्थ रूप में ग्रामीण गीतों का अनोखा प्रकार हमारे सामने आता है, जो ग्राम्य अँचल की प्रत्येक गतिविधि एवं संवेदना के ताने-बाने को अपने में समेटे हुए होता है। ये लोकगीत साहित्य की भाषा से परे मिट्‌टी से जुड़े लोगों की भाषा में अपना रूप ढालते हैं। लोकगीतों में जीवन को एक विशिष्ट नजरिये से देखा जाता है। गुजरात में लोकगीत का अर्थ 'अपनी मिट्‌टी की महक' या 'अंतरमन से बहने वाला झरना' ऐसा माना जाता है। गुजरात के लोकगीत प्रांतीयता की अपनी अनूठी छाप लिए हुए हैं। उन्मुक्त और स्वच्छंद स्थिति में ही लोकगीत जन्म लेते हैं, पनपते हैं। किसी भी प्रकार के बंधन या विचार-परिश्रम, विचार-कोशिश द्वारा नहीं। 'कैसा लगेगा', 'क्या करुं तो अच्छा लगेगा?' ऐसी चिंता लोकगीत नहीं करते। ये प्रयत्नपूर्ण सजाए हुए कृत्रिम अलंकारयुक्त आडंबरी नहीं होते वरन् निर्बंध और नैसर्गिक होते हैं। इस प्रकार लोकगीत - 'लोकजीवन के अव्यक्त मन में से, अचिंत्यरूप से अनायास ही उद्‌भवित होने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति है लोकगीत।'[1]

स्व. श्री काकासाहेब ने कहा है कि 'लोकगीत साहित्य का मूलाधार कहा जाता है। लोकवार्ता (कहानी) जैसे इतिहास, पुराण और उपन्यास इत्यादि अभिजात साहित्य का उद्‌गम है। वैसे लोकगीत, खंडकाव्य और महाकाव्य, वीणाकाव्य और चारणकाव्य, नाटक और चम्पु - हर रसात्मक कृति का मूल (जड़) है।'

मानव एक सामाजिक प्राणी है। परस्पर के व्यवहार में मोह, माया, ममता, सज्जनता, सहृदयता, सहानुभूति जैसे गुण ही मानव को पशु से मानव बनाते हैं, एक-दूजे से जोड़ते हैं। मानवता हृदय के इन गुणों से ही उत्पन्न होती है। हृदय के इन गुणों को सँवारने का काम लोकगीत-संगीत करते हैं। लोकगीत मनुष्य के अंदर निहित रसात्मक अंश को जागृत करते हैं। इसी से समग्र सृष्टि प्रिय और आनंददायक लगती है।

दुःखों को हलका करने की अमोघ शक्ति लोकगीतों में भरी पड़ी है। लोकगीतों से सुख की मात्रा बढ़ती व दुःखों की मात्रा घटती जाती है। दुःखों को सह्य इन लोकगीतों ने ही बनाया है। हर एक के साथ आत्मीयता के अनोखे बंधन व रक्षा इन लोकगीतों द्वारा ही हुए हैं। काव्य के किसी अन्य प्रकार ने पारिवारिक व सामाजिक संबंधों की मूल्यरक्षा नहीं की और सामाजिक सहृदयता को सहकार जीवंत रखने में लोकगीतों जितना किसी

1. लोकसाहित्य विमर्श - जयमल्ल परमार, पृ. 50

ने अमूल्य योगदान नहीं दिया है। लोकगीत भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंग हैं।

इस प्रकार लोकगीत आनंद-प्रेरित मानव हृदय की रसात्मक अनूभूति की रागमय अभिव्यक्ति है। पश्चिम के लोकगीत के अभ्यासकर्ता ने लोकगीतों को 'मानव हृदय से उत्पन्न हुआ और सहज भाव से स्फूरित हुआ संगीत' माना है।

लोकगीतों का वर्गीकरण निम्न रूप से किया जा सकता है-

(1)	शौर्य गीत	(2)	प्रेम गीत	(3)	विरह गीत
(4)	प्रकृति गीत	(5)	प्रसंगानुसार गीत	(6)	त्यौहार, उत्सव, मेले
(7)	देवी-देवता के गीत	(8)	संतवाणी		

गुजराती लोकगीतों विषयक एवं वर्गीकरण विषयक गीतों की बृहद विस्तृत चर्चा तीसरे अध्याय में पूर्णरूपेण करेंगे।

(2) कथा गीत :

वेदकाल से - प्राचीन काल से कहानी-कथा गद्य एवं पद्य में कही व गाई जाती है। मुद्रण कला थी नहीं अतः गीत कंठ से याद रखे जाते। कंठ में याद रखने के लिए पद्य सबसे सरल है, अतः कहानी-कथा पद्य में रचने की शुरुआत हुई। डॉ. हसु याज्ञिक के अनुसार 'कथागीत' यह पर्याय 'बेलाड्' के नजदीक का है।

गुजराती लोकसाहित्य विशेषज्ञ डॉ. हसु याज्ञिक के अनुसार-

''जिस किसी गीत में कथा का अंश हो, अर्थात् जो किसी एक पात्र के हेतु गाया गया हो, कोई पात्रगत जीवन संदर्भ या घटना के लिए रचा गया हो, ईश्वर या देवी-देवता के पात्र को लक्षित करने वाली घटना पर आधारित हो, पुराण, इतिहास, इतिहास मूलक दंतकथा, सती, 'बहारवटिया' जैसे कोई समाजस्वीकृत सच्चे और भूतकाल के किसी विख्यात या अल्पविख्यात पात्र के विषय में रचा गया हो, बाढ़, सूखा, भूकंप जैसे प्रकृतिक विपदा, लूटपाट जैसी आपत्ति को विषय बनाया गया हो, पुत्रवधू या भांजी जैसे सांसारिक संबंधी को किसी रिश्तेदारों द्वारा दुःख दिया गया हो, उसकी आपदा-विपदा की बीत गाई जाती रही हो, ऐसे गीतों को यहाँ पात्रानुसार, प्रसंगानुसार, विषयानुसार रखकर उन्हें 'कथागीत' नाम दिया गया।'[1]

अतः ऐसी पद्यबंध कथाओं को हिन्दी में लोकगाथा, मराठी में पवाड़ा, बंगाली में गीतिका, आसाम में गीत और गुजराती में कथागीत, गीतकथा, दुहाबद्ध (दोहाबद्ध) कथा और अंग्रेजी में 'बेलेड्झ' कहते हैं।

असली मूल फ्रेंच शब्द पर Baller (to dance) पर से Ballad शब्द की रचना हुई है। गोल वृत्ताकार में नृत्य करती हुई मंडली को गति के ताल के साथ एकताल बनकर गाया जाने वाला लोकगीत अर्थात् Ballad; कुछ अंग्रेजी विद्वानों के मत दृष्टव्य हैं :

(1) Prof. W. P. Care : A lirical narrative poem ballad is a peculier kind of poetry

1. गुजराती लोकसाहित्यमां कथागीतो - डॉ. हसु याज्ञिक, पृ. 1-2

which has definite form of its own. अर्थात् भावनाओं से छलकता कथाकाव्य बेलेड विशिष्ट प्रकार का काव्य स्वरूप है।

(2) श्री जे. अेन्ट विस्टले : A short traditional narrative poem. छोटा परंपरागत कथाकाव्य।

(3) होगर्ट : Anonymous narrative poem - अज्ञात कवि का कथाकाव्य।

पश्चिम के विद्वानों से हम गुजरात की ओर चलें। यहाँ गीतकथा, दोहाबद्ध कथा, कथागीत का ज्यादातर प्रारंभ श्री झवेरचंद मेघाणी जी से माना जाता है।

गीतकथाओं के दोहे (दुहा) भयंकर घटनाओं और पहाड़ी जीवन की विलक्षण नीति-रीति को भी चित्रित करते हैं। ये दोहे कथा के किसी प्रसंग का शायद ही वर्णन करते हैं। इसमें तो कहानी में आनेवाले पात्र की उत्कट मनोव्यथा का उच्चारण होता है। ये भावना तत्व को घनीभूत करते हैं। गीत कथा या कथागीत में वर्णनों को बहुत कम स्थान होता है। पात्रों के गहरे संवेदनों को व्यक्त करने के लिए इन पदबंधों की रचना हुई है। कथागीत के अनेक प्रकार हैं जो वर्ण्य विस्तार के भय से यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं। परंतु एक कथा व गीत उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कथा :[1]

सत्यवान-सावित्री गीत - 'अश्वपति राजा ने डाही दीकरी' (अश्वपति राजा की समझदार बेटी) गीत में सत्यवान-सावित्री की कथा है। राजा अश्वपति को सावित्री नामक एक समझदार बेटी है। वह सत्यवान से विवाह करने के लिए दृढ़ निश्चयी है। सत्यवान के पिता अंध और वृद्ध होने के कारण शत्रुओं ने राज्य ले लिया। सत्यवान वन में गया। लकड़ियाँ काटते सर्प ने दंश (डस) दिया। उसका जीवन केवल एक दिन का ही बचा था। फिर भी सावित्री ने शादी करने की रट ली। नारदजी ने कहा सत्यवान का आयुष्य (उम्र) मात्र एक दिन की बाकी रही है। फिर भी सावित्री न मानी और वन में जा सत्यवान से विवाह किया। सावित्री के सत्य के तप से भगवान प्रसन्न हो सत्यवान को लंबी उम्र दी। सत्यवान सावित्री नगर में लौटे, दादाजी ने उन्हें राजपाट दिया। आज तक लोकप्रिय इस कथा गीत में सावित्री-यम संवादन है।

इस कथा से संबंधित कथागीत इस प्रकार है -

गीत : 'अश्वपति राजा ने डाही दीकरी रे'
(अश्वपति राजा की समझदार बेटी रे)
दीधां सावित्री अेना नाम (उसका नाम सावित्री रखा)
अश्वपति राजा ने डाही रुडी दीकरी रे।
राजाए सावंत्री वीवा आदर्या रे (राजा ने उसका विवाह तय किया)
अेने सत्यवान वरवाना कोड रे (उसे सत्यवान से विवाह की इच्छा थी)
अश्वपति राजा ने डाई रुडी दीकरी रे।

1. गुजराती लोकसाहित्यमां कथागीतो - डॉ. हसु याज्ञिक, पृ. 8,31,32,33

(अश्वपति राजा की समझदार प्यारी बेटी रे)
राजा अंक घरडो ने आंखे आंधळो रे, (राजा बूढ़ा व अंधा था)
तेने दीकरो छे सत्यवान रे... (उसे सत्यवान नामक बेटा था।)
अश्वपति राजाने डाई रुडी दीकरी रे।
राजपाट शत्रुअे अेना लई लीधां, (शत्रु ने राजपाट ले लिया)
राजा हाल्यो गयो वनवास रे; (राजा वनवास चला गया)
अश्वपति राजाने डाई रुडी दीकरी रे।
जईने जंगलमां बांध्यु झूंपडूं रे (जंगल में झोंपड़ी बनाई)
सत्यवान सेवा करे दि' ने रात रे; (सत्यवान पिता की रात-दिन सेवा करता)
अश्वपति राजाने.....
सत्यवान जंगलमां कापे लाकडां रे , (सत्यवान वन में लकड़ी काट रहा है)
न्यांथी डसीओ काळो नाग रे; (काले नाग ने उसे डस लिया)
अश्वपति राजाने....
अेनी आवरदा अेक दि'नी रे, (उसकी उम्र एक दिन की बची)
जमडा आवी उभा छे द्वार रे (यमदूत द्वार पर आ खड़े हैं)
अश्वपति राजाने....
सावंत्रीअे जईने दादाने पूछियुं रे (सावित्री ने दादा से पूछा)
दादा मोरा, लगनिया लेवराओ रे (दादा मेरा ब्याह रचाओ)
अश्वपति राजाने .....
दीकरी देशो देश मां कागळ मोकलुं रे, (बेटी, देशों-देश पत्र भिजवाता हूँ)
तेडावुं मोटा मोटा भूप रे (बड़े-बड़े राजाओं को बुलवाता हूँ)
अश्वपति राजाने.....
आपणे राजकुंवररिया तेडाविये रे, (हम राजकुमारों को न्यौता देंगे)
आवशे अेक करता अेकवीश रे; (एक से इक्कीस आएंगे)
अश्वपति राजाने....
दादा, वरुं तो सत्यवानने वरुं रे, (मैं तो दादा, सत्यवान का वरण करुँगी)
बीजा मारे मन छे भाई ने बाप रे; (और सब मेरे लिए बाप-भाई समान हैं)
अश्वपति राजाने....
दादे ऋषि नारदजीने तेडाविया रे (दादा ने नारदजी को बुलवाया)
दुःख मारा भांगो तमे भगवान रे; (मेरे दुःखों को दूर करो प्रभो)
अश्वपति राजाने....
सावंत्री ने नारदे समजावियां रे, (सावित्रो का नारदने समझाया)
दीकरी मेली दियो रे ई वात रे; (बिटिया, उस बात को छोड़ दो)

अश्वपति राजाने .....

सत्यवाननी आवरदा अेक दि' नी रे (सत्यवान की उम्र एक दिन की है)

परणी ने पस्तावानो नई रे पार रे (विवाह कर बहुत पछताओगी)

अश्वपति राजाने.....

आपो आशिष, ने विदाय मने करो रे, (आशिर्वाद दे विदा करो मुझे)

कोई मने रोकजो ना, पळ वार रे; (पलभर भी मुझे कोई न रोकना)

अश्वपति राजाने.....

वनमां जईने सावंत्रीजी वर्यां रे, (वन में जाकर सावित्री ने विवाह किया)

सत्यने तपे रीझ्या छे भगवान रे; (सत्य के तप से ईश प्रसन्न हुए)

अश्वपति राजाने....

सत्यवानने सावंत्री आव्यां राजमां रे (सत्यवान-सावित्री नगर में आए)

दादे दीधां अेने राज अने पाट रे; (दाद ने राज्यपाट सब दिया)

अश्वपति राजाने डाई रुडी दीकरी रे

(अश्वपति राजा की समझदार व प्यारी बेटी रे)

××××××××

(3) लोक नृत्य :[1]

लोकनृत्य हमारी लोक संस्कृति की अमूल्य उपज है। अनेकों वर्ष पूर्व नदी किनारे जब संस्कृति का पालना बँधा तब लोकनृत्यों का जन्म हुआ ऐसा कहा जा सकता है। प्रकृति की गोद में मस्त बनकर विचरण करने वाले आदिमानव के अंतर में आनंद की उमंगे हिलोरें लेने लगतीं तब वह हर्षोद्रेक में उन्मत्त बन नाचने व गाने लगता। इस प्रकार धरती संग अंतर की प्रीत बाँधकर बैठे हुए मनुष्य की आनंदाभिव्यक्ति और हृदय उर्मियों के आविर्भाव में से गुजरात के लोकनृत्यों का जन्म हुआ। ऐसे नैसर्गिक वातावरण में जन्मे लोकनृत्य मानव के परमानंद की अनुभूति की पैदाइश होने से लोकहृदय पर गजब का जादू किया है। इसलिए गुजरात के गौरवमय लोकजीवन में लोकनृत्यों का भरपूर खजाना भरा पड़ा है। लोकनृत्य के साथ लोकगीत और लोकवाद्य भी जुड़े हैं।

✲ लोक उत्सव और धार्मिक परंपरा के साथ जुड़े लोकनृत्य :

गुजरात की सांस्कृतिक लोककला के वारिसरूप (पीढ़ीगत) ऐसे लोकनृत्य लोक उत्सवों और धार्मिक परंपराओं के साथ प्राचीनकाल से जुड़े हैं। जवानों को जवानी की हिलोरें चढ़ाने वाले (उन्मत्त बनाने वाले, मस्त करने वाले) लोकमेले होते हैं। ऋतुओं के रंगोत्सव की रंगीनियाँ लेकर आनेवाला होली का त्यौहार होता है। गोकुळ आठम (जन्माष्टमी), नवरात्रि जैसे पवित्र त्यौहार होते हैं, रांदल (माता) की घर-पर स्थापना हो

1. गुजरातनां लोकनृत्यो : जोरावरसिंह जादव

या फिर विवाह जैसे मंगल प्रसंग को धूमधाम से मनाया जा रहा हो तब लोकहृदय आनंदविभोर बनकर नाचते हैं, गाते हैं, जीवन की थकान दूर करके हल्के-फूल्के बन जाते हैं। लोकनृत्यों का संबंध सामाजिक उत्सव के साथ जितना जुड़ा है उतना ही लोकजीवन की धार्मिक परंपरा के साथ भी जुड़ा हुआ है।

✻ गुजरात के लोकनृत्य :

गुजरात में जितना लोकजातियों, लोक बोलियों और वस्त्राभूषणों का वैविध्य देखने को मिलता है, उतना ही वैविध्य उसके लोकगीतों, लोक उत्सवों और लोकनृत्यों में देखने मिलता है। कई प्रदेशों में गोल वृत्ताकार, कुछ एक में अर्द्ध वृत्ताकार, कहीं दो-दो पंक्तियों में तो कहीं एक पंक्ति में स्त्री-पुरुष मिलकर या कहीं अलग-अलग गीत के साथ या बिना गीत के नृत्य करते हैं। जबकि कई जगहों पर ढोल, शहनाई, मंजीरा और तालीओं के ताल संग नृत्य करते हैं। इस प्रकार विविध जाति के लोकनृत्यों में साम्य होने पर भी विविध प्रांतों की बोली, उत्सव, वाद्य, वस्त्राभूषणों के कारण स्थानीय रंगों की छाप के साथ लोकनृत्यों में विविधता देखने को मिलती है। गुजरात के गाँव-गाँव में देखे जाने वाले लोकनृत्य का 'माणीगर' (हृदय से लुत्फ उठानेवाला) बनने पर ही उसके कला सौंदर्य का असली आस्वादन किया जा सकता है।

✻ सौराष्ट्र का टिप्पणी नृत्य :

गुजरात के इस टिप्पणी नृत्य ने संपूर्ण देश में बड़ी प्रसिद्धि पाई है। टिप्पणी सोरठ (सौराष्ट्र) की धरती पर आया हुआ चोरवाड़ प्रांत में रहकर कठोर मजदूरी करनेवाली 'कोळी' (निम्न जाति) स्त्रियों का श्रमहारी नृत्य है। संगीत और नृत्य द्वारा कठिन परिश्रम को हल्का फूल जैसा बना देने की लोकनारी की समझ-बूझ से कलामय टिप्पणी नृत्य जन्मा है।

प्राचीन समय में चूने वाले घर के कमरों, छत या मकान की नींव में चूने को दबाया जाता (धाबो धरबातो)। इसे चूने को दबाकर फर्श को चिकना (लीसी) टिप्पणी नामक साधन की सहायता से बनाया जाता। लंबी लकड़ी के अंतिम छोर पर लकड़ी या लोहे का चौकोर टुकड़ा लगी टिप्पणियों को हाथ में ले आमने-सामने या वृत्ताकार खड़ी कोळी बहनें मधुर स्वर से गीत गातीं-

वांसलड़ी वागे ने मारुं मन हरे (बाँसुरी बजती है, मेरा मन हरती है)
त्यांथी मारुं जोबनियुं भरपूर रे (मेरा यौवन भरपूर हिलोरे ले रहा है)
आंखलडीनो चाळो कानुडो बहु करे (कन्हैया आँखों से बहुत इशारे करता है)

विविध तरह की पाँच-छह से पंद्रह बीस की चाल (पंक्ति) में चलनेवाला यह नृत्य करनेवालीओं का जोश, जुस्सा, अटूट तालबद्धता, त्वरा और चंचल अंगों के मोड़ और विद्युतगति इस नृत्य की विशिष्टता है। सौराष्ट्र में कोळी बहनों के उपरांत राजकोट की भील स्त्रीओं ने भी टिप्पणी में अपना स्थान बनाए रखा है। आज तो सीमेन्ट युग आने से चूने की फर्श अदृश्य हो गई है, परंतु टिप्पणी नृत्य आज भी नृत्य प्रकार के रूप में जीवित है।

❋ रांदल माता का 'घोड़ा खूंदना' (माता की स्थापना पर घर में किया जाने वाला नृत्य)

उत्तर गुजरात, दक्षिण गुजरात, खंभात बारा, बढ़ियार, खाखरिया और काठियावाड़ में सूर्य पत्नी रन्नादे (रांदल माँ, पुत्र संतति देने वाली) की पूजा की बड़ी महिमा है। कई जातियों में विवाह, सीमंत (गोद भराई) जैसे सामाजिक प्रसंगों पर रांदल माँ की स्थापना की जाती है। इस प्रसंग पर परिवार की स्त्रियाँ रांदल मां का 'घोड़ा खूंदने' (शरीर को ऊपर से आधा नीचे झुकाते हुए कूद कर किया जाने वाला नृत्य) आती हैं। ये स्त्रियाँ ताली बजाकर गोल घूमती व गाती हैं-

लोटा तेडाव्या रांदलमाना, मारा आंगणिया सोहाय,
घोडला खूंदशे रे रांदलमा, मारी आशापूरण थाय.
सामसामा रे ओरडिया सामे कांई सुतारीना हाट,
घडजो घडजो रे बाजोठिया, मारा रांदलमाने काज .
रुडा रांदलने पधरावुं, आज मारा आंगणिया सोहाय.

(सौराष्ट्र में रांदल मां की स्थापना के वक्त कुछ निश्चित लुटिया लेकर उसमें माँ की स्थापना की जाती है। जैसे कि पाँच या इक्कीस लुटिया, श्रद्धानुसार)।

अर्थात् - लुटिया प्रस्थापित की है रांदल माँ की, मेरा आंगन सुशोभित हो रहा है।
मेरा रांदल मा घोड़ा खूंदेगी, और मेरी आशा परिपूर्ण होंगी।
कमरे आमने-सामने हैं, बढ़ई का बाजार है।
मेरी रांदल माँ के लिए बाजठ (बैठने का साधन) बनाना।
उस पर अपनी प्यारी रांदल माँ को बिठाउँगी, आज मेरा आंगन सुभोभित हो रहा है।

रांदल माँ को खुश करने के लिए हमची गीत गाए जाते हैं।

❋ जाग नृत्य :

अनेकों जातियों में विवाह, जनेऊ या सीमंत जैसे प्रसंगों पर माताजी का उत्सव किया जाता है जिसमें माताजी के जाग तेड़े (प्रस्थापित किए) जाते हैं। पांचवें या सातवें दिन माता की विदाई के वक्त बाजठ के चारों कोनों पर लकड़ियाँ बाँध उन्हें बीच में इकट्ठा कर बाँधा जाता है। फिर उसे रंगीन चुन्नी (चुंदड़ी) से लपेट लिया जाता है, सुंदर मंदिर जैसा बनता है। अंदर माता की स्थापना की जाती है। परिवार की स्त्री (जिसके यहाँ उत्सव हो) इस 'जाग' को सर पर रखकर बाजे गाजे के साथ गरबे गाते हुए माता के 'मढ' (मंदिर) जाती है। 'जाग' सर पर रखे स्त्री गरबे के बीच पैरों की ठेक लगाकर 'जाग नृत्य' करती है। अहमदाबाद और खेड़ा जिले में बसनेवाली ठाकोर जाति की स्त्रियाँ नवरात्र में 'माता के मढ' में यह नृत्य करती हैं। ये रिवाज बनासकांठा के राधनपुर कोळीयों में भी देखने मिलता है।

✻ **रास और रासडा :**

रास ये सौराष्ट का अग्रिम विशेष नृत्य है। रास खेलनेवाला व रास देखनेवाला दोनों को आनंद से तरबतर करनेवाला यह नृत्य ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत में हल्लीसक, क्रीड़ा या 'दंडक रास' के रूप में वर्णित था। यही 'रास' या 'दांडिया रास' गोप संस्कृति का विशिष्ट अंग माना जाता है। प्राचीनकाल से गोप-गोपियाँ साथ मिलकर कृष्णलीला रास खेलते।

✻ **दांडिया रास :**

सौराष्ट्र के नृत्य प्रकारों में सर्वाधिक ध्यानाकर्षक यदि कोई नृत्य है तो वह दांडिया रास है। शरदपूनम, नवरात्रि, झलजीणी अगियारस, सातम-आठम (त्यौहार) के अवसरों पर या 'फूलेका' (वर ब्याह की अगली रात्रि को सारे गाँव में दूल्हे को बग्गी में बिठाकर बाजे-गाजे के साथ घूमाया जाना) जैसे अवसरों पर गाँव के नवयुवक हाथों में रंगीन गुच्छों (ऊनी, रेशमी) वाले लकड़ी या पीतल के दांडिए लेकर हींच-केरवा (ताल) इत्यादि ताल में दांडिया रास लेते हैं। इसमें 'दोडिया', 'पांचिया', अठिया, बारिया, 'नमन' (विविध खेल) मंडल लिए जाते हैं। रास खेलते-खेलते गीत के अनुरूप स्वस्तिक, त्रिशूल, ध्वज जैसे माताजी के प्रतीक रचे जाते हैं। दांडिया रास मोटे तौर पर पुरुष खेलते हैं परंतु अब तो स्त्रियों में भी प्रचलित होने लगा है। नळकांठा के पढार (जाति), काठियावाड़ के कोळी, आयर, कणबी, राजपूत रास में सीधे-उल्टे चलन ले बैठक लगा, गोल चक्कर (फुदड़ी) लगाते हैं, तब उनके रास में प्रच्छन्न छटा खिल उठती है। जन्माष्टमी के अवसर पर 'भरवाड़' (गाय, भैंस चराने, दूध बेचनेवाले) स्त्री-पुरुष साथ मिल रास खेलते हैं। रास दांडिया के साथ और दांडिया बगैर, पैर से ठेका और हाथ के हिलोर संग खेला जाता है। शराओ के 'ढाल-तरवाट' रास में गुजरात के संस्कार की झाँकी मिलती है।

✻ **गोफगूंथन-सोळंगा रास :**

गोफगूंथन रास ये सौराष्ट्र के कोळी और कणबी का जाना-माना नृत्य है। ये नृत्य एक विशिष्ट प्रकार का मनोहर रास है। इस नृत्य में बुनी हुई सुंदर डोरीओं का गुच्छ सबसे ऊपर बाँधी हुई कड़ी में से निकालकर उसका एक-एक सिरा (छोर) रासधारीयों के हाथों में दिया जाता है। प्रारंभ में गरबा तत्पश्चात दांडिया रास वेग पकड़ता है। रास के साथ बैठक, फुदड़ी (गोल घूमना) और टप्पे लेते-लेते बेल आकार एक के अंदर एक बाहर से घुमते हुए रास खेलते हैं। जिसके साथ-साथ रंगीन डोरी की मनोहर बुनाई (गूंथणी) गूंथी जाती है। गूंथन पूर्ण होने पर उल्टी चाल से रास की रमझट के साथ डोरी की गूंथनी खोली जाती है। इस रास में कोळीओं की छटा, तरलता और विद्युत वेग हमारा मन हर लेते हैं।

✻ **मेर लोगों के दांडिया रास और चाबखी :**

मेर (जाति) लोगों के दांडिया रास हमारा खास ध्यान खींचते हैं। दांडिया शुरु करने से पहले कपड़ों

पर गुलाल का छिड़काव कर दांडिया रास की रमझट (झड़ी) बुलाते हुए धरती को हिलाकर रख देते हैं तभी उनके बाहुबल और लड़ायक खमीर का सच्चा प्रदर्शन होता है।

मेर लोगों के दांडिए सीधे-सादे दांडिए न होकर मोटी विशिष्ट लकड़ी के होते हैं, जो शहनाई व ढोल के ताल से चलते हैं। इनमें समूहगीतों का अभाव होता है। मेर के दांडिए टकराने या फटकारने (खेलते वक्त) की छटा तलवार के झटके की कलामय छटा है। दांडिया रास में ली जानेवाली 'फुदड़ियाँ' (गोल बैठकर घुमना) मेर लोगों के दांडिया रास का विशेष आकर्षण है।

मेर लोग हाथों की तालियों से भी रास खेलते हैं। इस अवसर पर घर के बूढ़े, जवान नृत्य के बंधन बिना मन आए उस तरह उन्मुक्त तरीके से नाचते हैं। नृत्य का यह प्रकार 'चाबखी' नाम से प्रचलित है।

✻ रासड़ा :

लोकजीवन में अत्यंत प्रचलित ऐसे रास और रासड़ा के बीच फर्क समझना आवश्यक है। सौराष्ट्र में रास मूलतः पुरुष खेलते हैं। रास को हल्लीसक भी कहते हैं। जबकि रासड़ा स्त्रियाँ लेती हैं अर्थात् खेलती हैं। रासड़ा तालरासक का प्रकार है। रास में नृत्य की अधिकता जबकि रासड़ा में संगीत तत्व महत्वपूर्ण रहता है। स्त्रियों में आज एक ताली और तीन ताली का रसड़ा अधिक प्रचलित है। रासड़ा गरबे का एक प्रकार जैसा है। रास और गरबी पुरुषप्रधान जबकि रासड़ा नारीप्रधान है।

व्रतोत्सव अवसर पर, विवाह प्रसंग पर, मेले में, जन्माष्टमी, शरदपूर्णिमा जैसे अवसरों पर स्त्रियाँ रासड़ा की रंगत जमाती हैं। रासड़ा में नारी हृदय के भावों की सरस अभिव्यक्ति होती है। रासड़ा के गीत की वस्तु सामाजिक त्याग, बलिदान या वीरता का होता है। राधाकृष्ण के प्रणयगीत, रासड़ा में खूब गाए जाते हैं। रासड़ा में रास खेलनेवाली नारियों के वस्त्राभूषणों का प्रेदिशक वैविध्य ध्यानाकर्षक है।

✻ गरबा और गरबी :

गरबा यह गुजरात का अतिप्राचीन लोकप्रिय नृत्य का प्रकार है। गरबा शक्तिपूजा के साथ सविशेष रूप से जुड़ा हुआ है। गरबा की उत्पत्ति मूल देवीपूजा मानी जाती है। गरबा अर्थात् अनेकों छिद्रों वाला मिट्टी का घड़ा। गरबा शब्द की उत्पत्ति गर्भदीप में से हुई है। 'गर्भदीप' में से 'गर्भा' तत्पश्चात् गरबा हो गया। गर्भ अर्थात् घड़ा। घड़े में ब्रह्मांड की कल्पना है। उसमें प्रज्जवलित दीपक की ज्योत जीवन के सातत्य की झाँकी कराती है। इस रूप में गरबा आद्यशक्ति जगत् माता की ओर भक्तिभाव का प्रतीक है। नवरात्रि के नौ दिन गुजरात के हर गाँव व शहर की गलियाँ गरबा से गूँज उठती हैं। 'नोरतां' (नवरात्रि) के अवसर पर घर में 'जवारे' (गेहूँ या अन्य अनाज के दाने) उगाकर माताजी की स्थापना की जाती है। रात को 'चौक' (आंगन) में माताजी का स्थानक (प्रतिष्ठित) बनाकर स्त्रियाँ गोल घूमते हुए गाती हैं जिसमें माताजी की स्तुति विशेष रूप से होती है।

शंकलपुर सोहामणुं रे	(शंखलपुर बहुत सुहावना है)
आशापुरी ते मानुं धाम मारी बहुचरा	(मेरी आशापुरी माता का दरबार है)
कुंभारी आवे मलपतो रे	(कुम्हारी मुस्कुराता हुआ आता है)
जोईता गरबा लावे मारी बहुचरा	(जरुरत के गरबे वह लाता मेरी बहुचर माँ)।

गरबा में कभी खंजरी, मंजीरा या तबला का उपयोग होता है।

✻ गरबी :

गरबा और गरबी दोनों नृत्य प्रकार नवरात्रि उत्सव से जुड़े हैं। ये संघनृत्य के ही प्रकार हैं। गरबा अधिकतर स्त्रियाँ गाती हैं परंतु गरबी पुरुषों द्वारा गाई (खेली) जाती है। स्व. श्री मेघाणीजी लिखते हैं कि 'पुरुष गरबी लकड़ी की मांडवी की चोगरदम (मंडप के चारों ओर) गरबी मचाते और फुदड़ी (गोल घूमना) घूम लेते।'' गरबा अर्थात् छिद्रवाला घड़ा परंतु गरबी अर्थात् लकड़ी की मांडवडी (मंडप) ऐसा अर्थ होता है।

गरबी पुरुष नृत्य का प्रकार है। गरबी में दांडिया, ढोल, नरघां, मंजीरा का उपयोग होता है। गरबी नवरात्र, जन्माष्टमी, जलझीलणी अगियारस जैसे अवसरों पर गाई जाती है। गरबी को रासनृत्य का ही एक प्रकार माना जा सकता है। गरबी के गीत भी उतने ही जोशपूर्ण देखने को मिलते हैं -

वा वाया ने वादळ उमट्यां	(हवा और बादल आड़ पड़े हैं।)
गोकुळ मां टहुक्या मोर	(गोकुल में मोर टहुकने लगे हैं।)
मळवा आवो, सुंदर वर शामळिया	(सुंदर सलोने कान्हा, मिलने आओ।)

✻ पढारों का मंजीरा नृत्य :

मंजीरा नृत्य भाल नळकांठा (प्रदेश) में बसनेवाले पढारों का विशिष्ट लोकनृत्य है। मंजीरा को कुशलतापूर्वक रास में उतारकर दिल को दहला देने वाले हृदयस्पर्शी दृश्य खड़े करते हैं। इस नृत्य को करते वक्त पढार पाँव लम्बे पसारकर वृत्ताकार बैठते हैं। एकतारा, तबला, कांसीजोड़ा, बगलियुं (वाद्य) इत्यादि वाद्यों के साथ मंजीरे का ताल देकर जमीन पर लेट जाते हैं और लेटे-लेटे मंजीरे को ताल दे बैठ जाते हैं। अलग-अलग तरीके से मंजीरे बनाते हुए फुदड़ी (गोल घूमते) घूमते हुए फिर से लेट जाते हैं। लेटे-लेटे पाँव ऊँचे कर पैरों से मंजीरे बचाते हैं। शारीरिक स्फूर्ति देखने लायक होती है। सौराष्ट्र में अनेकों जगह पर 'बावण' (साधुबाबा की पत्नी) भी विविध प्रकार से देहडोलन करती हुई मंजीरा बजाती है। राजस्थान में यह नृत्य 'तेरह ताल' के नाम से जाना जाता है।

✻ गागर का हींच नृत्य :

भाल प्रदेश और काठियावाड में अत्यंत प्रसिद्ध है। त्यौहारों या विभिन्न अवसरों पर स्त्रियाँ भी हाथ में

'गागर', 'धोणियो' या 'वटलोई' (विभिन्न गागर – मटकी के प्रकार) लेकर ढोल को ताल संग हाथ की अंगुठियाँ, रुपा (धातु) के कड़े या बिछुए द्वारा ताल देकर हवा में गागर घुमाती अनोखे अंगमरोड़ द्वारा हींच को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाती हैं। रात ढले, ढोली थके परंतु हींच लेने वाली नारियाँ कभी न थके ऐसी रंगत जमती है। कच्छ की कोळी, बढ़ियार की रजपूतानियाँ हाथ में गागर ले हींच नृत्य करती हैं। हींच में कोई गीत नहीं होता, सिर्फ ढोल और गागर की ताल पर हींच किया जाता है। कोडीनार (स्थान) की ओर कारडिया रजपूत स्त्रियाँ सिर पर सात मटके (गागर) की हेल लेकर घूमती हुई हींच लेती है। नीचे झुककर तालियों से सुंदर ताल देती हैं।

❊ अश्वनृत्य :

अश्वनृत्य उत्तर गुजरात के 'कोळी' (जाति) में खूब जाना माना है। कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन गाँव के जवान और बूढ़े पुरुष अपने-अपने घोड़ों के साथ हाथ में तलवार लेकर इकट्ठे होते हैं। फिर गाँव के बाहर जा घोड़े दौड़ाते हैं। इस नृत्य में ऐसे अवसर पर दौड़ते हुए घोड़े पर खड़े हो हाथों में खुली तलवार द्वारा दुश्मनों पर वार करते हों ऐसा नृत्य करते हैं। इस अवसर पर वातावरण में शौर्यरस (वीररस) लहरा उठता है।

इन लोकनृत्यों के अलावा गुजरात में बसनेवाले आदिवासियों ने अपनी विशिष्ट संस्कृति का जतन कर रखा है। पूरा दिन कठोर परिश्रम करनेवाले आदिवासी रात को ढोल की आवाज सुनते ही समूह में इकट्ठे होकर पूरी रात ढोल की ताल पर नाचते हैं। विविध प्रांतों में बसनेवाले आदिवासियों में नृत्य की विशिष्ट परंपराएँ देखने को मिलती हैं। संक्षिप्त में इनके लोकनृत्यों के नाम इस प्रकार हैं :

(1) सीदीओ का धमाल नृत्य (2) घेर नृत्य (3) तडवी का घेरिया नृत्य
(4) तडवियों की आलेणी हालेणी (5) आदिवासियों का तरवार नृत्य (6) शिकार नृत्य
(7) ठाक्यां और भाचा नृत्य (8) आगवा नृत्य (9) काकड़ा नृत्य
(10) गामीतों का लोकनृत्य (11) पंचमहाल के आदिवासियों के नृत्य
(12) मांडवा नृत्य (13) हळपतिओं का तुर नृत्य (14) मेलों के नृत्य

इस प्रकार गुजरात के लोकजीवन में लोकनृत्य की समृद्ध परंपरा रही है। लोकजीवन के साथ जुड़े लोकनृत्यों में लोकजीवन की मस्ती, खुमारी, भावनाओं, उर्मियों की नैसर्गिक अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, इसी कारण लोकनृत्य लोकसंस्कृति का सच्चा परिचय करवाकर लोकजीवन की धर्मभावना और अडिग श्रद्धा का प्रदर्शन कराते हैं।[1]

(4) लोक कथाएँ :

महान गुजरात के लोकसाहित्य की चैतन्यपूर्ण रसधरा स्वरूप लोककथाएँ गौरवपूर्ण हैं। मानव मन की गतिविधि तथा जीवन व्यवहार के सभी अंगों को स्पर्श करनेवाली व उनका आलोचनापूर्ण दर्शन करानेवाली हमारे गुजरात की लोककथा या वार्ता (गुजराती में कहानी के लिए प्रयुक्त शब्द) के विपुल भंडार की तह पाना अत्यंत मुश्किल है व उसकी महिमा संपूर्णतः शब्दबद्ध करना नामुमकिन है।

1. गुजरातना लोकनृत्यो – जोरावरसिंह जादव

प्राचीन प्रचलित लोककथाओं का गुजरात के समर्थ संशोधनकर्ताओं ने संपादन किया है व ग्रंथस्थ भी हुई हैं। परंतु उसी मात्रा में अभी भी अनेकों लोककथाएँ अंधकार के गर्त में खोई हुई हैं।

विश्व साहित्य के समृद्ध अंग तथा आत्मा स्वरूप कथा पदार्थ द्वारा समग्र मानव जाति ने आदिकाल से लेकर आज तक रसतृप्ति या रसपान आस्वादित किया है। काव्य साहित्य की तुलना में कथा साहित्य का मूल्य कुछ कम नहीं है और व्यापकता की मात्रा विशेष है; यह कहने में कुछ गलत नहीं है।

लोककथा कल तक गुजरात में जानकारी सहित मनोरंजन प्राप्ति का प्रमुख साधन था। लोक कथाकार, लोकदायरे में बैठे स्व की निपुणतापूर्ण शैली में भिन्न-भिन्न प्रकार की लोकगाथाओं का रंग जमाते और श्रोतागणों के मन उसी कथा/वार्ता में रम जाते। आज भी वाणीकुशल (कसबी) लोककथाकार गुजरात के गाँवों में हैं और प्राचीन लोककथाएँ व रसपूर्ण दंतकथाएँ उनके कंठ में जीवंत है, कंठस्थ है, सुरक्षित है।

प्राचीनकाल की बहुप्रचलित अनेक प्रकार की लोककथाएँ व्यापक रूप में गुजरात में हैं, उनमें से कई कथाएँ युगों-युगों के अंधेरे उजालों को चीर कर, सदियों के कालक्रम को भेद कर, भाषा के फेरबदल के प्रभाव तहद भी अपना अस्तित्व टिकाए हुए हैं, जिन्होंने आज भी अपना आकर्षण बनाए रखा है।

युगों की तासीर, मानव समूह की संस्कारिता, समाज में प्रचलित रुढ़ियाँ, जीवन मे नीति का मूल्य, मानव मन की आकांक्षाओं के अनुसार प्रवर्तित वातावरण तथा तत्कालीन राजनीति के प्रभाव का सचोट प्रतिबिंब गुजरात की लोककथाओं में दृष्टिगोचर होता है। और युग परिवर्तन में से उभरते पुराने और नवीन जीवनरंग संजोए हुए ये लोककथायें गुजरात की संस्कारदर्शी एवं इतिहासलक्षी मूल्यवान साहित्य निधि हैं।

गुजरात का मानव जितना बहादुर है उतना ही नरम, मृदुहृदय है। उसकी भावनाओं में मानवता की उत्कृष्ट इच्छातथा जीवन की उच्च प्रणालिकाओं के साथ शुचिता संजोए रखने की तीव्र तमन्ना है। इसी कारण गुजरात की लोककथाओं के निराले रूप निखर आते हैं।

साथ ही साथ सूझबूझ संपन्न गुजराती चतुर, बुद्धिशाली व व्यवहारकुशल है। ये सिर्फ कहने मात्र के लिए नहीं परंतु गुजरात की लोककथाओं में रसमर्मभेद, बुद्धि चातुर्य, हृदयस्पर्शी बोधकता, प्रेम, त्याग तथा शौर्य के लक्षण अनिवार्य रूप से व्यक्त होते हैं।

गुजरात की लोककथाओं के प्रकार देखें तो धार्मिक या नीतिपरक दंतकथाएँ, जीवनस्पर्शी रसकथाएँ, अगम-निगम की चमत्कारिक अद्‌भुत कथाएँ, विशुद्ध त्यागपूर्ण प्रेमगाथाएँ व ऐतिहासिकता से पूर्ण वीरकथा, दंतकथा और बाल मनोरंजन की कल्पनाप्रधान परी कथाएँ जैसे अनेको प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रवाह में बहनेवाली लोककथाओं में रसास्वदन का ऐक्य है।

प्रत्येक धार्मिक व्रतों के महात्म्य की कथाओं का भंडार प्रचुर है, धार्मिक त्यौहारों में गुजरात के गाँवों की नदियों के किनारे व्रत करनेवाली भाविक नारियाँ उस व्रतके महात्म्य की कथा सुनती हुई आज भी दृष्टिगोचर होती हैं। जीवनदर्शन करानेवाली लोकरंजन की रसकथाओं में नीति, प्रेम, त्याग, स्वार्थ, धूर्तता, वैरभावना और क्षमाशीलता जैसे हर गुणों के दर्शन पात्र द्वारा अभिव्यक्त होते हैं। भूत-प्रेत की कथाएँ, कल्पनापूर्ण परीकथाएँ, चमत्कारपूर्ण मानसकथाएँ और स्त्री-चरित्र की विस्मयप्रेरक दंतकथाओं की प्रत्येक कक्षा में एक से

बढ़कर एक श्रेष्ठ लोककथाएँ जैसे : कोण हलावे लींबडी, वाळी सोनबाई, जगडू शेठ, गजरामारु, ढोलामारु, हलामण जेठवो, सोनपरी, लाखो वणझारो, वावडीनां पाणी, बाबरो भूत, ओढ़ो होथल, सोनकंसारी ये लोककथाएँ कंठोपकंठ जतन होने के बाद कुछ ग्रंथस्थ भी हुई हैं।

पंचतंत्र और हितोपदेश की बोधक कथाएँ, राजा भोज और कालिदास की बुद्धिचातुर्यपूर्ण और बादशाह अकबर व बीरबल की हाजिरजवाबी की कथाओं का गुजरात में व्यापक प्रचार है।

गुजरात के गौरवस्वरूप कथास्वामी शामळ भट्ट ने सर्व प्रकार के रस की निर्झरणी बहानेवाली कल्पना चातुर्यपूर्ण और अहोभाव प्रेरक कथाएँ प्रदान कीं, विस्मयपूर्ण कथानक, सचोटतापूर्ण स्वाभिमानी वीरता, शौर्य (खुमारी) व मर्मग्राही जीवनदर्शन वाली कथाओं का सृजन कर, शामळ भट्ट ने गुजरात में स्वयं का लोककथा युग प्रस्थापित किया। साथ ही उन्होंने स्वयं की कथाओं को पदबंध तथा ग्रंथस्थ कर अमरत्व प्रदान किया। इनके कथा संग्रह -'बत्तीस पुतली', 'वेताल पच्चीसी' और 'सूडाबहोतेरी' की प्रत्येक कथाएँ छह प्रकार के कथारस से परिपूर्ण है। कथा के कथानक का चयन, पात्र निरूपण और वातावरण सर्जित करने की उनकी कला विस्मयप्रेरक है। और इसी कारण कथाकारों ने उनको स्वकंठ पर धारण कर गांव-गांव के प्रत्येक दायरे में रसपूर्ण प्रचार की नदियाँ प्रवहृत कर दीं।

प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक कथाएं, लोककथाएँ व दंतकथाएँ भी उतनी अडिग व रसपूर्ण हैं। झुंझाऊं ढोल बजाती, शरणाई में सिंधुरी रंग घोटती, तलवारें चमकतीं, वीर की बुलंद आवाज सुनाती, लहू की नदियाँ बहाती ऐसी ऐतिहासिक युद्धकथाएँ हैं। त्याग, बलिदान और नीतिनियम नेकी को संजोए शौर्यपूर्ण लोककथाएँ, लोककथाकारों के कंठ से व्यवहृत हो रसनिर्झरणी बहाती हैं। राजनैतिक अराजकता में गुजरते गुजरात, कच्छ और सौराष्ट्र प्रदेशों में ऐसी शौर्यपूर्ण लोककथाओं की मात्रा सविशेष है। कल तक के रजवाडी युग में भूतकाल में राजदरबार के पटांगण में, कृषक तथा अन्य वर्ण के लोग त्यौहारों अवसरों पर रसजिज्ञासुओं की मंडळी जमती जहाँ भाट, चारण, तरगाळा, तूरी और रावल जैसे व्यावसायिक कथाकार लोककथाओं की रंगत जमाते। कंठ्य कथाओं का ये कथन निपुणतापूर्ण व अद्‌भुत होता है। ये लोककथा बीच-बीच में अनेक धाराओं में बँटती बिखरती हास्य रस की फुहारें भी फैलाती और फिर कुशलतापूर्वक मोड ले कथाकार मुख्य कथाप्रवाह पर आ जाता है। कथा संग काव्य और आनुषंगिक तुक्कों का गूंथन, तथा कथा समय का वातावरण, प्रत्येक पात्र की भावनाओं को व्यक्त करने वाली निराली भाषा तथा अभिनयपूर्ण वकतृत्व यह वाणी कथाकार की निपुणता हेतु कसौटीरूप साबित होता है।[1]

(1) ऐतिहासिक लोककथा: जसमा-ओडण[2]

राजा जेसंग दरबार लगाकर (सभा) बैठा था तभी जाचक आया और बोला - राजा, तेरी कोई भी रानी जसमा जितनी रूपवती नहीं है। उसी रात रानी को स्वप्न आया कि पाटण में पक्षी (पोरा) भी बिना पानी के तड़पकर मर रहे हैं। इससे रानी ने राजा को जगाया और तालाब खुदवाने के लिए कहा। राजाने भाँजे

1. गुजरातनी लोकवार्ता : श्री हरिलाल उपाध्याय
2. गुजराती लोकसाहित्यमां कथागीतो : डॉ. हसु याज्ञिक

दूधमल को बुलाकर आधा लाख 'ओड़' (जाति) और सवा लाख 'ओडण' बुलवाने के लिए पत्र लिखवाया। पत्र लेकर संदेशवाहक सोरठ (सौराष्ट्र) में आया और ग्वाल, किसान, भथवारी, गोबरवाले, पनिहारी, चारण भाट इत्यादि से पूछता हुआ 'जसमा' के घर पहुँचा। जसमा ने पत्र जेठ, ससुर आदि को दिखाया परंतु उन्होंने निकम्मे (नठारा) देश न जाने की सलाह दी। अंत में जसमा ने पति से बात की। ओड-ओडणों ने दशहरे के दिन प्रयाण किया और शरदपूर्णिमा के दिन पहुँचे। जसमा के रूप सौंदर्य पर मुग्ध हुए राजा ने जसमा को महल में निवास, गद्दे, झूले (हिंडोळा), दही आदि देने के प्रलोभन दिए परंतु जसमा ने सभी का अस्वीकार किया। राजा ने उसे मिट्टी उठाने की मजदूरी न करने के लिए कहा व अन्य प्रलोभन दिए। परंतु जसमा न मानी। अतः राजा ने उसे उशके पति के विषय में पूछकर सभी ओड़ों (तालाब खोदनेवाले मजदूर) का वध करवा दिया। इसी कारण जसमा ने सभी को समूह में एक साथ अग्निदाह देकर उसी ऊँची उठनेवाली ज्वाला में आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी जल रहे थे। यह दिखाते हुए जसमा ने राजा जेसंग से कहा - ऊपर देख, सोने की समड़ी (चील)। जैसे ही राजा ने ऊफर देखा कि तुरंत जसमा आग में कूद पड़ी और राजा को बाँझपन का श्राप दिया।

(2) शौर्यकथा : पुत्र समान तेजल[1]

पुत्री भी वीरांगना बन शत्रु का सामने करके पुत्र के न होने का अफसोस दूर कर सकती है यही इस कथा का सार है। पुत्री का जन्म हुआ है ऐसा पत्र पढ़ते ही दादाजी की आँखों में आँसू आ जाते हैं। तेजु ने यह देख लिया व कारण पूछा। दादाजी बोले पुत्र होता तो शत्रु का सामना करता। तेजल बोली - मैं भी शत्रुओं का सामना करने युद्ध करुँगी। दादाजी ने पूछा तेरे 'स्त्रीत्व' की पहचान कराने वाले हाथों के कड़े, हृदय का हूर, चूड़ी, सिर के बाल और बिंधा हुआ नाक कैसे छिपाओगी? तेजल जवाब देते हुए बोली, 'पाँव के कड़े पजामे में, छाती कुरते में, चूड़ी छिपाकर, सिर के बालों को पगड़ी में छिपाऊँगी। दादाजी के बाल बच्चे जीते न थे अतः प्रण की खातिर नाक छेदन करा नाथुजी बनी हूँ और ननिहाल में मामी ने दाँतों को रंगवाया है ऐसा स्पष्ट करुँगी। इस प्रखार तेजल तेजमल बन युद्ध के मैदान में उतरी। साथियों ने वह नर है या नारी इसकी परीक्षा लेने हेतु चीजें खरीदने की कसौटी की। दूसरे साथियों ने खरीदने के लिए चुन्नी, मोडिया (दुल्हन के माथे ब्याह के वक्त सर पर पहनने वाला ताज) व मोजड़ी पसंद की जबकि तेजमल ने पुरुष है वह सिद्ध करने के लिए फेंटा (सर की पगड़ी), सोगठा (शतरंज के मोहरे) व जूते (पुरुष के) पसंद किए। इस प्रकार पुत्र समान बन तेजल ने शत्रुओं का सामना किया।

(3) प्रेम कथा : शेणी विजाणंद[2]

गुजरात की प्रेमकथाओं में शेणी विजाणंद की कथा मुख्य व लोकप्रिय है। मैलाकुचैला व माँ-बाप की छत्रछाया विहीन कंगाल चारण जवान की बीन (जंतर) बचाने की सिद्धि पर ग्रामनिवासी कुमारी शेणी मोहित

1. गुजराती लोकसाहित्यमां कथागीतो : डॉ. हसु याज्ञिक
2. लोकसाहित्य : झवेरचंद मेघाणी

हो गई। वनवासी ऐसे दोनों बालक एकप्राण बन गए। परंतु बड़े कुल की मर्यादा व बढ़ाई में मस्त पिता एकलौती लाडली कन्या के भिखारी, जंतर (बीन) बजाने वाले के साथ कैसे ब्याहता? १०१ नवचंदरी (भैंसों की अव्वल जात) भैंसे लाने की शर्त रखकर जवान को विदा करने वाला पिता भूल गया कि पुत्री शेणी का अंतर भी जवान के पीछे जा रहा था। दो जवां हृदय के अमूल्य प्रेम के सामने पिता के कुलगौरव की क्या बिसात थी। शेणी ने हठ पकड़ी कि सिर्फ विजाणंद के नाम की ही वरमाला पहनेगी। बाकी सभी चार लाख चारण भले ही विवाह के लिए तैयार हों, सभी को बंधु कह बुलाऊँगी। प्रियतम विजाणंद के जाने के पश्चात शेणी विरहाग्नि में जलने लगी। ऐसा लगता मानो सारी प्रकृति भी शेणी की विरहाग्नि में एकाकार हो गई। दिन-महीने बीतने लगे, वर्षा आई, धरती हरीभरी हो उठी परंतु शेणी विजाणंद के बगैर सूखकर काँटा हो गई। पिता का घर छोड़, सगे-संबंधी नाते-रिश्तेदारों से संबंध तोड़ शेणी घर छोड़ वन-वन भटकने लगी। विजाणंद की खबर पूछने लगी। शरीर पर ओढी हुई काली कमली की ध्वजा बना चारों दिशाओं में फहराने लगी ताकि उसे देख बीनवाला जवान प्रेम ध्वज देख वापस आए। परंतु प्रियतम न आया। कोमलांगी वनकन्या हिमालय में शरीर गलाने जा पहुँची। हिमालय के हिमशिखरों पर जब उसके गात्र गल रहे थे तभी वहाँ विजाणंद जा पहुँचा : शेणी वापस चल; तू भले ही शारीरिक द्रष्टि से पंगु हो गई, मैं कंधे पर कावड़ उठाकर तुझे उसमें घुमाऊँगा। परंतु शेणी को दोनों जन्म (भव) बिगाड़ने न थे। बोली विजाणंद अंतिम बार बीन (जंतर) बजा ले। जिसे सुनते-सुनते शांति प्राप्त कर वह मृत्यु को प्राप्त हुई। ऐसी संवेदन मधुर बर्फ-चिता पर पुरुष (विजाणंद) हिस्सेदार न बन सका। वह जीवित रहा जिसके खातिर, एक शेणी दूसरी बीन दोनों ही फूट चुके थे। पामर पुरुष की तरह जिया। 'पेट भरने की खातिर : भात भीख मांग खाता। तेजहीन बन जीवित रहा।

(4) पौराणिक व धार्मिक कथा (व्रत कथाएँ): हरिशचंद्र-तारामती[1]

यह गुजरात की प्रसिद्ध पौराणिक लोककथा है। जिसमें सत्य की खातिर राजा हरिशचंद्र ऋषि के घर, तारा (पत्नी) पंडित के घर और पुत्र रोहीदास चांडाल के घर बिककर सेवा-चाकरी करने लगे। ऋषि विश्वामित्र ने रोहीदास को घड़ा साफ कर पानी भरने के लिए कहा। तभी रोहीदास को सर्पदंश हुआ। किसी ने माता को समाचार दिए। तारा ने करुण आक्रंद किया - चाचा-मामा कोई नहीं है। मृत्यु शैया कौन तैयार करेगा? अतः माता तारा ने अपना वस्त्र आधा चीरकर उसमें पुत्र को लपेटा। स्मशान में चौकीदार के दाम माँगने पर सती तारा ने आधा बची हुआ वस्त्र दे दिया व चिता जलाई। तभी आकाश से होती मूसलाधार बारीश से चिता ठंडी पड़ बुझ गई व शब (पुत्र) पानी में बहने लगा। अतः तारा शव को ले मंदिर में जा बैठी। विश्वामित्र ने और भी अधिक कठिन परीक्षा लेने के लिए गाँव में बात फैला दी की कोई चुडैल शव खा रही है। इसलिए खीमडारूपी कसाई हरिशचंद्र ने खड्ग उठाई। तभी एकाएक प्रभु उसके सतपालन से प्रसन्न हो प्रकट हुए व उसका हाथ पकड़ लिया। पुत्र रोहीदास पुनः जीवित हुआ और अंत में हरिशचंद्र हाथी पर, रोहीदास घोड़े पर और तारामती पालखी में बैठ पुनः नगर में आए व सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे।

---

1. गुजराती लोकसाहित्यमां कथागीतो : डॉ. हसु याज्ञिक

व्रतकथाएँ : वैसे को गुजरात में अनेकों व्रत, उनसे संबंधित कथाएँ व उनका उजमन प्रचलित है। अतएव कुछ प्रमुख व्रतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) **ऐवरत-जीवरत :** ऐवरत अर्थात आषाढ़ी अमावस्या का दिन। विवाह कर आई नवब्याहता हिंदू नारी अषाढ वद १३ से इस दिन उपवास करती है व अमावस को नहा-धोकर, भीगे पानी टपकते बालों को लेकर ब्राह्मण (पंडित) के घर जाकर घी का दिया जलाती है, ऐवरत जीवरत नाम देवियों के दर्शन कर, शाम को फलाहार करती है, पूर्ण रात्रि जागरण करती है, ऐसा व्रत पांच वर्ष तक करती है। पाँच वर्ष पश्चात् उसका उजमन किया जाता है।

उजमन : शक्ति सामर्थ्यानुसार पाँच पंडिताईनों को घर बुलाकर वस्त्रदान करती हैं, यथाशक्ति पाँच नारियल की कटोरियाँ, पाँच पैसे (उस जमाने के), पाँच सुपारी, पाँच नाड़ाछड़ी (लाल पवित्र धागा), पाँच बिंदी पैकेट इतनी चीजें दान करती है।

(2) **तुलसी व्रत :** कार्तिक सुद अग्यारस अर्थात् देवदीवाली के दिन विष्णु भगवान को शालिग्राम स्वरूप में तुलसी के वृक्ष संग विवाह किया जाता है। इस पर से अच्छा श्रेष्ठ वर पाने की कामनार्थ कुँवारी कन्याओ हेतु यह व्रत आयोजित किया गया है।

(3) **नोळी नोम :** सावन मास की शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन जिसे संतान न हो ऐसी स्त्री यह व्रत ज्वार का भुट्टा खाकर (पूरा दिन) करती है।

(4) **नाग पंचमी :** सावन मास (महीने) की अंधेरी पंचमी का यह व्रत है। व्रतधारिणी इस दिन पनिहारे (रसोई में पानी के घड़े रखने का स्थान) पर नाग का चित्र बनाकर, घी का दीया जलाती है। उसके चारों ओर पानी की धारा बनाकर, फिर बाजरा व घी को मिलाकर 'कुलेर' का नैवेद्य (भोग) लगाया जाता है। स्वयं अगले दिन का पकाया हुआ बाजरे का ठंडा अन्न एक वक्त खाकर उपवास करती है।

(5) **शीतला सातम :** सावन वद सातम के दिन सवेरे जल्दी उठकर ठंडे जल से स्नान करना, पूरे दिन (छठ) अगले दिन पकाया हुआ ठंडा भोजन ही खाना, चूल्हा न जलाना और शीतला माँ की कथा का श्रवण-पठन करना।

(6) **जन्माष्टमी व्रत :** सावन वद अष्टमी के दिन प्रातः दातुन कर पवित्र जल में स्नान करना चाहिए। स्वच्छ वस्त्र धारण कर श्रीकृष्ण भगवान की कथा का श्रवण करना, भगवद् गीता का पाठ करना व सुगंधित चंदन पुष्प से श्रीकृष्ण का पूजन करना चाहिए। विविध वाद्य संग भजन-कीर्तन किए जाते हैं। पूर्ण दिवस उपवासी रहा जाता है। दूसरे दिन ब्रह्मभोजन करवाकर पारणा (स्वभोज) किया जाता है।

(7) **सामा पांचम:** भादों सुद पंचमी के दिन व्रत किया जाता है। इस दिन व्रत पालक 'अघेडा' की दातुन करती है, आँवले के चूर्ण से केश धोए शरीर पर मिट्टी चुपड़कर नहाती है। सामा (एक प्रकार का अन्न), कंदमूल, फलाहार खाकर पूर्ण दिन बिताती है। इस प्रकार सात वर्ष तक यह व्रत कर उसका उजमन करती है और गरीबों को यथाशक्ति दान दे व्रत पूर्ण करती है।

(8) **सोमवती अमास :** किसी भी महिने के सोमवार को पड़नेवाली अमास सोमवती अमास कही जाती

है। इस दिन भगवान शंकर का पूजन व पीपल वृक्ष की प्रदक्षिणा की जाती है। यह पवित्र व्रत सुख-संपत्ति, संतति व दीर्घायुष देनेवाला माना जाता है।

(9) गणगौर व्रत : चैत सुद तीज के दिन यह सौभाग्यप्रद व्रत किया जाता है। गुणवान वर की कामना हेतु यह व्रत किया जाता है। रेणुका व गौरी की स्थापना कर काँच की चूड़ियाँ, सिंदूर, वस्त्र, कुमकुम व अक्षत चंदन से पूजन किया जाता है। दोपहर बाद एक वक्त का भोजन किया जाता है। प्रसाद पुरुषों में नहीं बाँटा जाता। राजस्थान का यह राष्ट्रीय त्यौहार है।

(5) नीति कथाएँ :

ऐसी कथाएँ भारतीय व गुजराती साहित्य में पंचतंत्र में हैं। डॉ. दुर्गा भागवत ने उसे पंचतंत्रीय कथा नाम दिया है। 'हितोपदेश' में भी ऐसी कथाएँ हैं। हितेपदेशीय कथाओं में पशुकथा, बोध-कथा, जातक कथा व चूर्णिका की कथाओं का समावेश किया जाता है। ये सब नीतिपरक व हितोपदेश की कथाएँ हैं। इनमें मानवीय व अमानवीय पात्र होते हैं। हितोपदेश की कथाओं के पात्र भी मानवसहज व्यवहार करते हैं। जातक कथाओं में भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की बोधपूर्ण कथाएँ हैं। चूर्णिकाएँ जैन और श्रावकों को नीतिपूर्ण संस्कार और बोध देने हेतु सृजित हुई हैं। पंचतंत्र की कथा, एकबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि, मछलियों की कथा भी उपदेश, नीति व बोधतत्व से परिपूर्ण हैं। उसी प्रकार काशी से पढ़कर आनेवाले ब्रह्मपुत्रों व पंडितों की कथा है। गुजराती लोककथाओं में ऐसे उपदेश-कथाएँ काफ़ी संख्या में मिलती हैं।

लाख मत लडबडी, हजार मत हडबडी
सो मत सडबडी, पण अेकमत आपडी, ते ऊभी वाट तापडी

ऐसी लोककथाएँ गाँववालों की जीभ पर होती हैं जिसका वह दंतकथा के तौर पर उपयोग करते हैं। गाय, सांड, लोमडी, सर्प, उल्लू, कछुओ, बकरा इत्यादि अमानवीय पात्र मुख्य पात्र स्थान में होते हैं हितोपदेशीय कथाओं में। इन कथाओं के अंत में बोध या उपदेश फलित होता है जिसका लक्ष्य अशिक्षित व अनपढ़ लोक लोगों को संस्कारित करना होता है। नीतिकथाओं का कथानक छोटा, स्वभाव से गंभीर व शुष्क होता है। इसके अंतर्गत हास्यरस अत्यंत चोटपूर्ण, व्यंग्यात्मक व सूक्ष्म होता है। ऐसी कथाएँ मुख्य रूप से गद्य में होती हैं परंतु बीच-बीच में श्लोक या दोहे भी आ जाते हैं। नीतिकथाएँ मनोरंजन के साथ-साथ लोक समाज को संस्कारित करने का लक्ष्य पूर्ण करने हेतु निकला लोककथा का स्वरूप है। ये कथाएँ विकसित व संस्कारी चित्र की पैदाइश मानी जाती हैं।

(6) लोकनाट्यः

भारतभर में प्रत्येक प्रांत के पास अपना विशिष्ट कहा जाए ऐसा पुरातन ठेठ लोकनाट्य, लोकनृत्य व लोकसंगीत देखने को मिलते हैं। उत्तरप्रदेश की नौटंकी, आंध्र का यक्षगान, दक्षिण की कथकली, बंगाल की जात्रा उसी प्रकार गुजरात का प्राचीन लोकनाट्य स्वरूप 'भवाई' है। 'भवाई' शब्द की व्युत्पत्ति के संदर्भ में

तीन-चार मत प्रचलित हैं। एक मतानुसार नाटक के सूत्रधार को 'भावपति' कहते हैं। अर्थात् नई सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला। भावपति से भायति और उससे भवाई हुआ हो। दूसरे मतानुसार 'भव' अर्थात् शिव-नटराज पर भवाया शब्द की कल्पना की गई हो। तीसरे मतानुसार भव-वही अर्थात् भव की किताब। श्री रसिकलाल परीख भवाई शब्द का संबंध भावन संग जोड़ते हैं। 'भवाई' शक्तिमाता की उपासना का एक प्रकार है। इसमें गायन (गाना), बजाना और नर्तन का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है।

लोकनाट्य रूप में जानी जाने वाली भवाई का खानदान अत्यंत प्राचीन है। राजस्थान में संपूर्ण भवाई नृत्य रूप में प्रस्तुत होती है। गुजरात की भवाई भी प्राचीन लोकनृत्य ही था। चौदहवीं शताब्दी के अंतिम पच्ची वर्षों में हुए 'असाइत ठाकर' तरगाळा जाति के आद्यपुरुष माने जाते हैं। असाइत कवि, गायक व वक्ता था। उसने भवाई नृत्य में गीत, संवाद व अभिनय डालकर नाट्य का स्वरूप प्रदान किया। 'तब से भवाई ने लोकनृत्य से लोकनाट्य का स्वरूप धारण किया। असाइत ने संपूर्ण वर्ष तक हररोज रात को एक भवाई वेश प्रस्तुत किया जा सके इसके लिए ३६५ भवाई वेशों की रचना की '[1] ऐसा कहा जाता है। उसमें से आज मुश्किल से 50-60 जितने भवाई वेश शेष बचे हैं।

लोकजीवन का मनोरंजन करते भवाए:

जैसे गानेवाले गायक के रूप में पहचाने जाते हैं, वैसे भवाई करने वाले लोग 'भवाए' के रूप में पहचाने जाते हैं। ये भवाए भवाई करने वाले तरगाळा (जाति) ब्राह्मणों का एक व्यावसायिक वर्ग है। यह लोग नायक या भोजक के नाम से भी जाने जाते हैं। इन तरगाळों को गायन, वादन व नर्तन की कला के संस्कार जन्मजात मिलते हैं। आज तो तरगाळा की भवाई मंडलियां गाँव-गाँव घूमती देखी जाती है। इन भवायों में भी विभिन्न वर्ग होते हैं। भवायों की मंडलियाँ 'पेडा' के रूप में मानी जाती हैं। एक 'पेडे' में सामान्यतया १२ से २० भवाए होते हैं। पेडा का मुखिया नायक के रूप में पहचाना जाता है। भवाए पेडे में सिर्फ पुरुष ही होते हैं। स्त्रियाँ नहीं होतीं (पुरुष ही स्त्रियों के पात्र का वेश धरते हैं। ऐसा वेश करनेवाले 'कांचळिया' कहे जाते हैं। पेडे का व्यवस्थापक 'कोटवाळिया' और भूंगळ (वाद्य भवाई) बजानेवाला भूंगळिया के नाम से जाने जाते हैं।

भवाए माता के भक्त माने जाते हैं। वर्षाऋतु के पश्चात् सर्वप्रथम भवाई करने निकलने से पहले माते के मढ (दरबार) समक्ष भूंगळ[2] बजाकर सबसे पहले रमत (खेल भवाई का) देनी पड़ती है। वे लोग भवाई वेश द्वारा माता की पूजा करते हैं। इस पूजा के पश्चात् वे माथे पर रंगबिरंगी केसरिया फेंटा (पगड़ी) पहन, आँखों में काजल डाल, चकाचक दाढ़ी पर तेल का हाथ फिराकर गाँव-गाँव में भवाई करने निकल पड़ते हैं। गाँव के चौक (चौपाल) में डेरा डाल, मुखिया से रजामंदी लेने जाते हैं। तत्पश्चात् रात्रिभोज बाद गाँव के स्त्री-पुरुष, अबाल-वृद्ध सभी चौक में इकट्ठे होते हैं। भूंगळ पेंह-पेंह कर बजने लगती है व चौक के बीचोंबीच माता (देवी) की मशाल रखी जाती है। फिर नायक जोर-जोर से गाना शुरु करता है और गवैये पीछे-पीछे गाते हैं-

---

1. यह छप्पा इसका समर्थन करता है:
ठाकर आशाराम गोर कणबीजन केरा, विविध जातिना वेश, भजवता रच्या भलेरा
2. भवाई के साथ भूंगळ (वाद्य) अविभाज्य रूप से जुड़ी है। भूंगळ बिना भवाई का रंग नहीं जमता।

भले भले भाई, भले भले भाई
नमुं तने आई, रमती करो भवाई
भले भले भाई, भूंगळ वगाडो भाई
ढोलक बजाओ भाई नमु तने आई
भले भले भाई रमती करो भवाई

तत्पश्चात् सर्वप्रथम गजानन श्री गणेश का वेश आता है। एक भवाया सर पर सफेद या हरे रंग का कपड़ा या कमली ओढ़ हाथ में स्वस्तिक के मंगल चिन्हवाली थाली ले, पाँव में घुंघरु बाँध, कांसीजोड़ा (वाद्य) और तबले की ताल पर पाँव को खिलाते हुए आगे आता है तभी भूंगळ बजती है और वातावरण ता थै थैया की ध्वनि से गूँज उठता है तभी नायक गणेशजी की स्तुति प्रारंभ करते हैं-

दुंदाळो दुःख भंजणो, सदाय बाळे वेश,
अवसर पहेला समरिऐ, गवरी पुत्र गणेश.

तत्पश्चात् ग्रामजनों समक्ष जोगी-जोगन, देगम पदमणी, मणियारो पावैयो, काबो पुरबियो, टेडा रजपूत, मियां बीबी, काछियो कुंजरो, रामदेवपीर, शंकर-पार्वती, कान-गोपी, जसमा-ओडण, कालिका, वामन-बलि आदि विविध प्रकार के भवाई वेश आते हैं। बीच-बीच में रंगला, अडवा या डागला (विदूषक) नकल उतारते हुए हास्यरस की फुहारें छोड़ते हैं।

भवाई का कलासौंदर्य व विषयवस्तुः

पांचसौ से अधिक वर्षों से लोकजीवन में मनोरंजन की रसबौछार छोड़नेवाली भवाई उसके विशिष्ट कलासौंदर्य के कारण लोकजीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भवाई के प्राचीन वेशों में गायन, वादन व नर्तन ऐसे तीन पहलुओं का अद्‌भुत समन्वय होने से उसके वेश अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं।

भवाई की विषयवस्तु धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक होती है। उसमें जीनेवाले लोकजीवन की धड़कन, मानव स्वभाव की जातिगत कमजोरियाँ, विशिष्ट आदतों का चितार हल्के-फुल्के ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। भवाई के पात्र और डगला (विदूषक) गीत व नृत्य द्वारा चुटकुले सुनाकर, तीखी चोट प्रहार कर, लोगों की मूर्खता पर खिलखिलाहट हँसाते हैं। भवाई का दर्शक गाँव की अनपढ़ प्रजा वर्ग होने के कारण उसका प्रस्तुतीकरण व शैली सरल, सचोट और वेधक होती है। उसके मर्मस्पर्शी व्यंग्य मानवहृदय को छूते हैं। भवाई में आनेवाले दुहे (दोहे), जोडकणा, पांचकडा (तुकबंदी), सवैया, साखियाँ आदि हास्य के संग बोध देते हैं व बुद्धि चातुर्य का विकास भी करते हैं। साथ ही भवाई ने न केवल मनोरंजन अपितु समाजशिक्षण या लोकशिक्षण द्वारा समाजजीवन को गढ़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया है।

व्यवसायिक भवायो के अलावा गाँव के कोळी, कणबी, रजपूत (जातियाँ) आदि लोग भी नवरात्र त्यौहार के अवसर पर नौ दिन माताजी के मढ (दरबार) के सामने भवाई के विविध वेश प्रस्तुत करते हैं। भाल, नळकांठा, गोहिलवाड, वढियार, चुंवाळ (प्रांत) इत्यादि क्षेत्रों में इस प्रकार होने वाली परंपरागत भवाई

का स्वरूप आज भी वही का वही देखने को मिलता है।[1] अनेकों प्रचलित भवाई वेशों में से कुछ भवाई वेशों की कथा का संक्षिप्त सार निम्नलिखित है-

(1) **मणिबा सती का वेश:** हास्यप्रधान भवाई का सुंदर उदाहरण मणिबा सती का वेश है। कुछ एक परिवर्तनों के साथ आज के दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। सतीत्व के दृढ़ विचारोंवाली मणिबा परपुरुष का दर्शन भी नहीं करती। पुरुषवाचक (पुल्लिंग) चीजों को दूर कर स्त्रीलिंग वस्तुओं में बदलती है जैसे ढाळियो (ढलान) तुडवाकर नीक (नहर) बनवाती है। मोगरा (पु.) उखड़वाकर जुई (स्त्री.) का पौधा लगाती है और आम (पु.) का पेड़ कटवाकर बोरसली (स्त्री वृक्ष) लगवाती है। हास्यरस से भरपूर है मणिबा सती का वेश।

(2) **अर्धनारीश्वर का वेश:** इस वेश में विष्णु ने मोहिनीरूप धारण करके भस्मासुर का नाश कर शिव को बचाने की कथा है और उसी मोहिनीस्वरूप पर मोहित हुए शिवजी को पाठ पढ़ाने के लिए पार्वतीजी भीलनी का वेश धारण करती हैं।[2]

इन कथाओं के अतिरिक्त इति से अथ तक भवाई किस प्रकार प्रारंभ कर प्रस्तुत की जाती है उसका एक उत्तम उदाहरण जो 'भरतराम भा. महेता' द्वारा लिखित पुस्तक से लिया गया है। भवाई वेश का नाम 'गणेश की भवाई की वार्ता' (कहानी)।

गणेश की भवाई की कहानी:

आरासुर के अंबाजी के स्थानक (दरबार) की कार्तिक पूनम की रात की बात है। माताजी के चौक में मानों गणेशजी अवतरित हो रहे थे। उन्होंने आजकल के तरीके से सुंदर वस्त्र पहने थे। उनके साथ जो लोग आए थे उन लोगों ने माताजी की स्तुति कुछ इस प्रकार की-

''मा! चौद लोक मां तारो महिमा, समर्या पहेली वारे धा,
मा! समर्या पहेली संकट भागे, पूरे मननी आशा रे!
मा! अमे तारां सौ तने संभारीअे माता बलवंत जाणी रे!
मा! धनधाननी तुं धणियाणी, नगरकोटनी राणी रे!
मा! देश-देशना संघ ज आवे अंबा! तारा शरणे रे!
मा! कर जोडीने करीअे विनंती, सेवक राखो शरणे रे!''

(हे माता चौदह लोक में तेरी महिमा है और हम तेरा स्मरण करते हैं जिससे हमारे संकट भाग जाएंगे व मन की आशा पूर्ण होगी। तुम धनधान्य की मालकिन हो, नगर की रानी हो, दूर देशों से संघ माँ अंबा तेरी शरण में आते हैं। हम हाथ जोड़ बिनती करते हैं कि इस सेवक को अपनी शरण में ले लो।)

उसके बाद सभी ने ढोला-मारू के संबंध में सारी हकीकत (सच्चाई) बतानेवाली साखी गा सुनाई तत्पश्चात् गणेश का विस्तृत वर्णन करनेवाला गीत स्तुति रूप में सबने गाकर सुनाया। बीच में 'रामैयो

---

1. गुजरात का लोकनाट्य भवाई - लोकगुर्जरी अंक
2. भवाई वेश की कथा - हसु याज्ञिक

रामैयो' शब्द बोले जा रहे थे तभी उसी वक्त 'काली नाची रंग हुआ, भलभला जंग हुआ' ऐसे बोलते हुए 'काली' हाजिर हुई। वह स्वयं गूंगी होने के कारण 'ऊं ऊं...' स्वर निकाला करती, श्रोताजन हँसते।

प्रारंभ में एक व्यक्ति बोला, 'हे! काली! काली! तू कहाँ से चली आई?'' उत्तर में 'ऊ ऊ ऊ' से शुरु कर 'स्वर्गभवन' से। फिर उसी आदमी ने पूछा - सारी सभा मंडल के विघ्न हरोगे? तभी काली ने अपने तौर पर 'हाँ' कहा।

आदमी : तुम्हें क्या चाहिए? काली : चूड़ा... ऊ .. ऊ.. ऐसा बोली

फिर थोड़ी देर बाद नाचते हुए मंच पर से चली गई।

तत्पश्चात् रंगा चंगा भोमणिया, रंगा चंगा भोमणिया (ब्राह्मण) मंच पर आया। उपस्थित जनों में से एक ने पूछा 'महाराज! आप कहाँ से आए?'

ब्राह्मण : स्वर्ग भवन से और द्वारमति से।

व्यक्ति : महाराज! आपका नाम क्या है?

ब्राह्मण : मेरा नाम सातपांचेक, दसवीसेक, सत्तरअढारेक हैं , परंतु मुख्य तीन नाम हैं।

व्यक्ति : महाराज! पोथी-बोथी रखते हो कि नहीं?

ब्राह्मण : मेरे पिता तो विवाहित थे। मेरी पोथी तो मैं भूल गया हूँ। अरे मैं देवमंदिर में नमाज़ पढ़ने बैठा था फिर मस्जिद में वेद पढ़ने बैठा, बाद मे नैसर्गिक क्रिया (प्रातः) करने बैठा तभी वहीं मेरा पोथा भूल आया हूँ। इस पोथी ने तो परेशान कर रखा है।

इतना कहते ही पगड़ी में दबाई हुई पोथी जोर से खींच निकाली। फिर काले अक्षर और लाल चाचर चौक की बात बता, मेल, राशी, ग्रहण आदि की सच्चाई बता इस प्रकार गाया-

''अल्या! देवने पूजुं, देवने डोळियानो दीवो करुं,
देवने हांडवानी थाळ धरूं, मारा देव गणेशने पुजुं''

(मेरे आराध्य का पूजन करुं, दीया बाती जलाऊँ, देव को हांडवा (भोजन पदार्थ गुजरात) का थाल धरुं, मेरे देव गणेश की पूजा करुं)

इतना कह ब्राह्मण चला गया। फिर गणेश (पात्र) स्वयं इस प्रकार गाने लगे-

''रुडो ने रढियाळो मारुडो देश रुडो ने रढियाळो,
ढोले ने ढमके पाणी आवे, मारुडो देश रुडो ने रढियाळो''

(मेरा देश सुंदर है। ढोल बजते और पानी आता है, मेरा देश खूब सुंदर है।)

तत्पश्चात् अन्य सभी लोग गाने लगे-

''गणपति नाच्यो रंग भर्यो रे।
नाचनारांना विघ्न हरो रे।
नाच्यो मारो देवता गुणनो भंडार रे।''

(गणपति रंगभरे खूब नाचे व नाचनेवालों के विघ्न दूर करें, मेरा देवता नाचा वह अनंत गुणों की खान है।)

तत्पश्चात् गणेश के साथ हाजिर सभी रंगमंच के ऊपर से अदृश्य (नीचे) हो गए।

- भरतराम भा. महेता

(7) कहावत व पहेलियां:

पुराने जमाने में अपने यहाँ आख्यान खूब कहे जाते। यह आख्यान अर्थात् पुराणों की कथा। आख्यान लंबे होते हैं अतः उसमें आनेवाली बातों को सचोट रूप से समझाने के लिए उदाहरण स्वरूप दूसरी 'आडकथा' (पुष्ठकथा या दंतकथा) कही जाती, ये उपाख्यान कहे जाते। इसी उपाख्यान पर से प्राकृत में 'उवख-खाण्य' और उस पर से गुजराती में 'ऊखाणुं' (पहेली) बन गया। इन पहेलियों का अर्थ - बुद्धि चातुर्य की कसौटी करना, आनंद प्रमोदार्थ पूछा जाने वाला माना जाने लगा। लोक साहित्य प्रजाजीवन के हररोज के व्यवहार का प्रतिबिंब माना जाता है। आइए, गुजरात में प्रचलित कुछ कहावतों को देखें-

(1) कहावत:[1]

- गरीबनो बेली परमेश्वर (ईश्वर गरीबों का मददगार है, उद्धारक है)
- उद्योग सारां नसीबनुं मूळ छे, धंधो करे तो धान्य मळे (मेहनत करने से सफलता मिलती है, धनधान्य की प्राप्ति होती है)
- प्राण ने प्रकृति साथे जाय (स्वभाव और प्राण चिता तक साथ जाते हैं व कभी नहीं बदलता)
- करणी तेवी पार ऊतरणी (जैसा कर्म करोगे वैसा फल पाओगे)
- दोढ वांक वगर कजियो थाय नहीं (एक हाथ से ताली नहीं बजती)
- सांचने आंच नहीं
- सोबते असर (जैसी संगत वैसी रंगत)
- भरम भारी ने खीसा खाली (थोथा चना बाजे घना)
- चड़ती-पड़ती चाली आवे छे (उदय के साथ अस्त और अस्त बाद उदय, सुख के बाद दुःख, दुःख के बाद सुख)
- गजा प्रमाणे गातर करवी (जितनी चादर उतने ही पांव फैलाने चाहिए)
- उजड़ गाममां अेरंडो प्रधान (अंधों में काना राजा)
- रोग ने शत्रु ऊगता छेदवा (घाव, रोग व शत्रु को तुच्छ न गिन तुरंत शमन करना चाहिए, बढ़ने न दें)

ऊखाणां[2] (पहेलियाँ)

(1) जाय तवे वांका ने येय तवे पाधरा ती कांई?
जाय त्यारे वांकु ने आवे त्यारे सीधुं ते शुं?
(पानी भरने जाए तब घड़ा कमर में टेढ़ा लेकर जाएँ और पानी भरकर लौटते वक्त माथे पर सीधा होता है)
(उत्तर : पानी का घड़ा)

---

1. गुजराती कहेवतोनो संग्रह -आशाराम द. शाह
2. उखाणां (पहेलियाँ) - लोकगुर्जरी अंक (लोकसाहित्य) - श्री प्रवीणचंद्र अेच. शाह

(2) मों तो छे काळुं, पण करे छे अजवाळुं (मुँह तो है काला पर करता है उजाला)
(उत्तर : दियासलाई (माचिस की तिली)

(3) एक जनावर इतु, पूंछडे पाणी पीतुं (एक जानवर ऐसा है जो पूँछ से पानी पीता है)
(उत्तर : दीया, दिपक)

(4) पांच पडोशी वचमां अगाशी (पांच पड़ोसी, बीच में छत)
(उत्तर : हथेली)

(5) मा धोळी ने बच्चां काळां,
मा मरे ने बच्चां व्हालां
(माँ गोरी और बच्चे काले, माँ मरे और बच्चे प्यारे)
(उत्तर : इलायची)

* * * *